Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

श्री प्रतापनारायण मिश्र
के
चुने हुए निबन्धों का संग्रह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

स्कैन्ड/Scanned

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शिव मूर्ति

हमारे ग्रामदेव भगवान भूतनाथ सब प्रकार से अकथ्य अप्रतर्क्य एवं अचिन्त्य हैं। तौ भी उनके भक्त-जन अपनी रुचि के अनुसार उनका रूप, गुण, स्वभाव कल्पित कर लेते हैं। उनकी सभी बातें सत्य हैं, अतः उनके विषय में जो कुछ कहा जाय सब सत्य है। मनुष्य की भाँति वे नाड़ी आदि बंधन से बद्ध नहीं हैं। इससे हम उनको निराकार कह सकते हैं और प्रेम-दृष्टि से अपने हृदय-मन्दिर में उनका दर्शन करके साकार भी कह सकते हैं। यथा-तथ्य वर्णन उनका कोई नहीं कर सकता। तौ भी जितना जो कुछ अभी तक कहा गया है और आगे कहा जावेगा सब शास्त्रार्थ के आगे निरी बकबक है और विश्वास के आगे मनः शांति-कारक सत्य है!!! महात्मा कबीर ने इस विषय में कहा है वह निहायत सच है कि जैसे कई अंधों के आगे हाथी आवै और कोई उसका नाम बतादे, तो सब उसे टटोलेंगे। यह तो संभव ही नहीं है कि मनुष्य के बालक की भाँति उसे गोद में ले के सब कोई अवयव का ठीक-ठीक बोध कर ले। केवल एक अँग टटोल सकते हैं और दाँत टटोलने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाला हाथी को खूंटी के समान, कान छूने वाला सूप के समान, पाँव स्पर्श करने वाला खंभे के समान कहेगा, यद्यपि हाथी न खूंटे के समान है न खंभे के। पर कहने वालों की बात झूठी भी नहीं है। उसने भली भाँति निश्चय किया है और वास्तव में हाथी का एक-एक अंग वैसा ही है जैसा वे कहते हैं। ठीक यही हाल ईश्वर के विषय में हमारी बुद्धि का है। हम पूरा-पूरा वर्णन व पूरा साक्षात करलें तो वह अनंत कैसे और यदि निरा अनन्त मान के अपने मन और वचन को उनकी ओर से बिल्कुल फेर लें तो हम आस्तिक कैसे ! सिद्धान्त यह कि हमारी बुद्धि जहां तक है वहाँ तक उनकी स्तुति-प्रार्थना, ध्यान, उपासना कर सकते हैं और इसी से हम शांति लाभ करेंगे ।

उसके साथ जिस प्रकार का जितना सम्बन्ध हम रख सकें उतना ही हमारा मन बुद्धि शरीर संसार परमारथ के लिये मंगल है। जो लोग केवल जगत के दिखाने को वा सामाजिक नियम निभाने को इस विषय में कुछ करते हैं उनसे तो हमारी यही विनय है कि व्यर्थ समय न वितावैं। जितनी देर पूजा पाठ करते हैं, जितनी देर माला सरकाते हैं उतनी देर कमाने-खाने, पढ़ने-गुनने में ध्यान दें तो भला है ! और जो केवल शास्त्रार्थी आस्तिक हैं वे भी व्यर्थ ईश्वर को अपना पिता बना के निज माता को कलंक लगाते हैं। माता कह के विचारे जनक को दोषी ठहराते हैं, साकार कल्पना करके व्यापकता का और निराकार कह के अस्तित्व का लोप करते हैं। हमारा यह लेख केवल उनके विनोदार्थ है जो अपनी विचार शक्ति को काम में लाते हैं और ईश्वर के साथ जीवित सम्बन्ध रख के हृदय में आनन्द पाते हैं, तथा आप लाभकारक बातों को समझ के दूसरों को समझाते हैं ! प्रिय पाठक उसकी सभी बातें अनन्त हैं। तो मूर्तियां भी अनन्त प्रकार से बन सक्ती हैं और एक एक स्वरूप

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में अनन्त उपदेश प्राप्त हो सकते हैं। पर हमारी बुद्धि अनन्त नहीं है, इससे कुछ एक प्रकार की मूर्तियों का कुछ कुछ अर्थ लिखते हैं।

मूर्ति वहुधा पाषाण की होती है जिसका प्रयोजन यह है कि उनसे हमारा दृढ़ सम्बन्ध है। दृढ़ वस्तुओं की उपमा पाषाण से दी जाती है। हमारे विश्वास की नींव पत्थर पर है। हमारा धर्म पत्थर का है। ऐसा नहीं कि सहज में और का और हो जाय। इसमें बड़ा सुभीता यह भी है कि एक बार वनवा के रख ली, कई पीढ़ी को छुट्टी हुई। चाहे जैसे असावधान पूजक आवें कोई हानि नहीं हो सकती है। धातु की मूर्ति से यह अर्थ है कि हमारा स्वामी द्रवणशील अर्थात् दयामय है। जहाँ हमारे हृदय में प्रेमाग्नि धधकी वहीं हमारा प्रभु हम पर पिघल उठा। यदि हम सच्चे तदीय हैं तो वह हमारी दशा के अनुसार बर्तेंगे। यह नहीं कि उन्हें अपना नियम पालने से काम। हम चाहें मरें चाहें जियें। रत्नमयी मूर्ति से यह भाव है कि हमारा ईश्वरीय सम्बन्ध अमूल्य है। जैसे पन्ना पुख-राज की मूर्ति बिना एक गृहस्थी भर का धन लगाये नहीं हाथ आती। यह बड़े ही अमीर का साध्य है। वैसे ही प्रेममय परमात्मा भी हम को तभी मिलेंगे जब हम अपने ज्ञान का अभिमान खो दें। यह भी बड़े ही मनुष्य का काम है! मृतिका की मूर्ति का यह अर्थ है कि उनकी सेवा हम सब ठौर कर सकते हैं। जैसे मिट्टी और जल का अभाव कहीं नहीं है, वैसे ही ईश्वर का वियोग कहीं नहीं है। धन और गुण का ईश्वर प्राप्ति में कुछ काम नहीं। वह निरधन के धन हैं। 'हुनर मन्दों से पूछे जाते हैं बाबे हुनर पहिले'। या यों समझ लो कि सब पदार्थ आदि और अन्त में ईश्वर से उत्पन्न हैं, ईश्वर ही में लय होते हैं इस बात से दृष्टान्त मट्टी से खूब घटता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है। गोबर की मूर्ति यह सिखाती है कि ईश्वर आत्मिक रोगों का नाशक है हृदय मन्दिर की कुवासना रूपी दुरगंध को हरता है। पारे की मूर्ति में यह भाव है कि प्रेमदेव हमारे पुष्टि कारक 'सुगन्धं पुष्टि वर्द्धनं' यह मूर्ति बनाने वा बनवाने की सामर्थ्य न हो तो पृथ्वी और जल आदि अष्ठ मूर्ति बनी बनाई पूजा के लिये विद्यमान हैं।

वास्तविक प्रेम-मूर्ति मनोमन्दिर में बिराजमान है। पर यह दृश्य मूर्तियाँ भी निरर्थक नहीं हैं। इनके कल्पनाकारी मूर्ति निन्दकों से अधिक पढ़े लिखे थे। मूर्तियों के रङ्ग भी यद्यपि अनेक होते हैं पर मुख्य रङ्ग तीन हैं। श्वेत जिसका अर्थ यह है कि पर-मात्मा शुद्ध है, स्वच्छ है; उसकी किसी बात में किसी का कुछ मेल नहीं है। पर सभी उसके ऐसे आश्रित हो सकते हैं जैसे उजले रङ्ग पर सब रङ्ग। वह त्रिगुणातीत तो हुई, पर त्रिगुणालय भी उसके बिना कोई नहीं। यदि हम सतोगुणमय भी कहें तो बेअदबी नहीं करते! दूसरा लाल रङ्ग है जो रजोगुण का वर्ण है। ऐसा कौन कह सकता है कि यह संसार भर का ऐश्वर्य किसी और का है। और लीजिये कविता के आचार्यों ने अनुराग का रङ्ग लाल कहा है। फिर अनुराग देव का रङ्ग और क्या होगा? तीसरा रङ्ग काला है। उसका भाव सब सोच सकते हैं कि सबसे पक्का यही रङ्ग है, इस पर दूसरा रङ्ग नहीं चढ़ता। ऐसेही प्रेमदेव सब से अधिक पक्के हैं उन पर और का रङ्ग क्या चढ़ेगा? इसके सिवा वाह्य जगत के प्रकाशक नैन हैं। उनकी पुतली काली होती है, भीतर का प्रकाशक ज्ञान है। उसकी प्रकाशिनी विद्या है जिसकी समस्त पुस्तकें काली मसी से लिखी जाती हैं। फिर कहिए जिससे अन्तर, वाहर दोनों प्रकाशित होते हैं, जो प्रेमियों को आँख की ज्योति से भी प्रियतर है, जो अनन्त विद्यामय है उसका फिर और क्या रङ्ग हम मानें? हमारे रसिक पाठक जानते

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
हैं किसी सुन्दर व्यक्ति के आँखों में काजल और गोरे गोरे गाल पर तिल कैसा भला लगता है कि कवियों भरे की पूरी शक्ति, रसिकों भर का सर्वस्व एक बार उस शोभा पर निछावर हो जाता है। यहाँ तक कि जिनके असली तिल नहीं होता उन्हें सुन्दरता बढ़ाने को कृत्रिम तिल बनाना पड़ता है। फिर कहिये तो, सर्व शोभामय परम सुन्दर का कौन रङ्ग कल्पना करोगे? समस्त शरीर में सर्वोपरि शिर है उस पर केश कैसे होते हैं? फिर सर्वोत्कृष्ट देवाधिदेव का और क्या रङ्ग है? यदि कोई बड़ा मैदान हो लाखों कोस का और रात को उसका अन्त लिया चाहो तो सौ दो सौ दीपक जलाओगे। पर क्या उनसे उसका छोर देख लोगे? केवल जहाँ दीप ज्योति है वहीं तक देख सकोगे फिर आगे अन्धकार ही तो है? ऐसे ही हमारी हमारे अगणित ऋषियों की सब की बुद्धि जिसका ठीक हाल नहीं प्रकाश सकती उसे अप्रकाशवत् न मानें तो क्या मानें? राम-चन्द्र कृष्णचन्द्रादि को यदि अंगरेज़ी ज़माने वाले ईश्वर न मानें तौ भी यह मानना पड़ेगा कि हमारी अपेक्षा ईश्वर से और उनसे अधिक सम्बन्ध था। फिर हम क्यों न कहें कि यदि ईश्वर का अस्तित्व है तो इसी रंग ढंग का है।

अब आकारों पर ध्यान दीजिये। अधिकतर शिव-मूर्ति लिङ्गाकार होती है जिसमें हाथ, पाँव, मुख कुछ नहीं होते। सब मूर्ति पूजक कह देंगे कि 'हम तो साक्षात ईश्वर नहीं मानते न उसकी यथा तथ्य प्रति कृति मानें। केवल ईश्वर की सेवा करने के लिए एक संकेत चिह्न मानते हैं।' यह बात आदि में शैवों ही के घर से निकली है, क्योंकि लिंग शब्द का अर्थ ही चिह्न है।

सच भी यही है जो वस्तु वाह्य नेत्रों से नहीं देखी जाती उसकी ठीक-ठीक मूर्ति ही क्या? आनन्द की कैसी मूर्ति? दुःख

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की कैसी मूर्ति ? रागिनी की कैसी मूर्ति ? केवल चित्त-वृत्ति। केवल उसके गुणों का कुछ द्योतन !! बस ! ठीक शिव मूर्ति यही है। सृष्टि कर्तृत्व, अचिन्त्यत्व अप्रतिमत्व कई एक बातें लिंगाकार मूर्ति से ज्ञात होती हैं। ईश्वर यावत् संसार का उत्पादक है। ईश्वर कैसा है, यह बात पूर्ण रूप से कोई नहीं वर्णन कर सकता। अर्थात् उसकी सभी बातें गोल हैं। बस जब सभी बातें गोल हैं तो चिह्न भी हमने गोल-मोल कल्पना कर लिया यदि 'नतस्य प्रतिमास्ति' का ठीक अर्थ यही है कि ईश्वर प्रतिमा नहीं है तो इसकी ठीक सिद्धि ज्योतिर्लिंग ही से होगी, क्योंकि जिसमें हाथ, पाँव, मुख, नेत्रादि कुछ भी नहीं है उसे प्रतिमा कौन कह सकता है ? पर यदि कोई मोटी बुद्धि वाला कहे कि जो कोई अवयव ही नहीं तो फिर यही क्यों नहीं कहते कि कुछ नहीं है। हम उत्तर दे सकते हैं कि आंखें हों तो धर्म से कह सकते हो कि कुछ नहीं है ? तात्पर्य यह है कि कुछ है, और कुछ नहीं है। दोनों बातें ईश्वर के विषय में न कही जा सकें, न नहीं कही जा सकें, और हाँ कहना भी ठीक है। एवं नहीं कहना भी ठीक है। इसी भांति शिवलिंग भी समझ लीजिए। वह निरवयव है, पर मूर्ति है। वास्तव में यह विषय ऐसा है कि मन, बुद्धि और वाणी से जितना सोचा समझा और कहा जाय उतना ही बढ़ता जायगा। और हम जन्म भर बका करेंगे, पर आपको यही जान पड़ेगा कि अभी श्रीगणेशायनमः हुई है !!!

इसी से महात्मा लोग कह गये हैं कि ईश्वर को वाद में न ढूँढ़ो पर विश्वास में। इसलिये हम भी योग्य समझते हैं कि सावयव (हाथ पाँव इत्यादि वाली) मूर्तियों के वर्णन की ओर झुकें जानना चाहिये कि जो जैसा होता है उसकी कल्पना भी वैसी ही होती है। यह संसार का जातीय धर्म है कि जो वस्तु हमारे आस पास हैं उन्हीं पर हमारी बुद्धि दौड़ती है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
फ़ारस, अरब और इंग्लिश देश के कवि जब संसार की अनित्यता वर्णन करेंगे तो क़बरिस्तान का नक़शा खींचेंगे, क्योंकि उनके यहाँ स्मशान होते ही नहीं हैं। वे यह न कहें तो क्या कहें कि बड़े बड़े बादशाह ख़ाक में दबे हुए सोते हैं। यदि क़बर का तखता उठा कर देखा जाय तो शायद दो चार हड्डियाँ निकलेंगी जिन पर यह नहीं लिखा कि यह सिकन्दर की हड्डी है यह दारा की, इत्यादि।

हमारे यहाँ उक्त विषय में स्मशान का वर्णन होगा, क्योंकि अन्य धर्मियों के आने से पहिले यहां कबरों की चाल ही न थी। यूरोप में खूबसूरती के बयान में अलकावली का रंग काला कभी न कहेंगे। यहां ताम्र वर्ण सौन्दर्य का अंग न समझा जायगा। ऐसे ही सब बातों में समझ लीजिये तब समझ में आ जायगा कि ईश्वर के विषय में बुद्धि दौड़ाने वाले सब कहीं सब काल में मनुष्य ही हैं। अतएव उसके स्वरूप की कल्पना मनुष्य ही के स्वरूप की सी सब ठौर की गई है। इंजील और कुरान में भी कहीं कहीं खुदा का दाहिना हाथ बायां हाथ इत्यादि बर्णित हैं, बरंच यह खुला हुआ लिखा है कि उसने आदम को अपने स्वरूप में बनाया। चाहे जैसी उलट फेर की बातें मौलवी साहब और पादरी साहब कहें, पर इसका यह भाव कहीं न जायगा कि ईश्वर यदि सावयव है तो उसका भी रूप हमारे ही रूप का सा होगा। हो चाहे जैसा पर हम यदि ईश्वर को अपना आत्मीय मानेंगे तो अवश्य ऐसा ही मान सक्ते हैं जैसों से प्रत्यत्त में हमारा उच्च सम्बन्ध है। हमारे माता, पिता, भाई-बन्धु, राजा, गुरू जिनको हम प्रतिष्ठा का आधार एवं आधेय कहते हैं उन सब के हाथ, पाँव, नाक, मुँह हमारे हस्तपदादि से निकले हुए हैं, तो हमारे प्रेम और प्रतिष्ठा का सर्वोत्कृष्ट सम्बन्धी कैसा होगा बस इसी मत

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर सावयव सब मूर्ति मनुष्य की सी मूर्ति बनाई जाती है। विष्णुदेव की सुन्दर सौम्य मूर्तियाँ प्रेमोत्पादनाथ हैं क्योंकि खूबसूरती पर चित्त अधिक आकर्षित होता है। भैरवादि की मूर्तियां भयानक हैं जिसका यह भाव है कि हमारा प्रभु हमारे शत्रुओं के लिये महा भयजनक है। अथच हम उसकी मंगलमयी सृष्टि में हलचल डालेंगे तो वह कभी उपेक्षा न करेगा। उसका स्वभाव क्रोधी है। पर शिवमूर्ति में कई एक विशेषता हैं। उनके द्वारा हम यह उपकार यथामति ग्रहण कर सकते हैं।

शिर पर गंगा का चिन्ह होने से यह भाव है कि गंगा हमारे देश की सांसारिक और परमार्थिक सर्वस्व हैं और भगवान सदा शिव विश्वव्यापी हैं। अतः विश्वव्यापी की मूर्ति-कल्पना में जगत वा सर्वोपरि पदार्थ ही शिर स्थानी कहा जा सकता है। दूसरा अर्थ यह है कि पुराणों में गंगा की विष्णु के चरण से उत्पत्ति मानी गई है और शिवजी को परम वैष्णव कहा है। उस परमवैष्णवता की पुष्टि इससे उत्तम और क्या हो सकती है कि उनके चरण निर्गत जल को शिर पर धारण करें। ऐसे ही विष्णु भगवान को परम शैव लिखा है कि भगवान विष्णु नित्य सहस्र कमल पुष्पों से सदा शिव की पूजा करते थे। एक दिन एक कमल घट गया तो उन्होंने यह विचार के कि हमारा नाम कमल-नयन है अपना नेत्र कमल शिव जी के चरण-कमल को अर्पण कर दिया। सच है अधिक शैवता और क्या हो सकती है! हमारे शास्त्रार्थी भाई ऐसे वर्णन पर अनेक कुतर्क कर सकते हैं। पर उनका उत्तर हम कभी पुराण प्रतिपादन से देंगे। इस अवसर पर हम इतना ही कहेंगे कि ऐसे-ऐसे सन्देह बिना कविता पढ़े कभी नहीं दूर होने के। हाँ, इतना हम कह सकते हैं कि भगवान विष्णु की शैवता और भगवान शिव की वैष्णवता का आलंकारिक वर्णन है। वास्तव में विष्णु अर्थात्

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)
व्यापक और शिव अर्थात् कल्याणमय यह दोनों एक ही प्रेम-स्वरूप के नाम हैं। पर उसका वर्णन पूर्णतया असम्भव। अतः कुछ-कुछ गुण एकत्र करके दो स्वरूप कल्पना कर लिये गये हैं जिससे कवियों को वचन-शक्ति के लिए आधार मिले।

हमारा मुख्य विषय शिव-मूर्ति है और वह विशेषतः शैवों के धर्म का आधार है। अतः इन अप्रतर्क्य विषयों को दिग्दर्शन मात्र कथन करके अपने शैव भाइयों से पूछते हैं कि आप भगवान गंगाधर के पूजक होके वैष्णवों से किस बरते पर द्वेष रख सकते हैं? यदि धर्म से अधिक मतवालेपन पर श्रद्धा हो तो अपने प्रेमाधार भगवान भोलानाथ को परम वैष्णव एवं गंगाधार कहना छोड़ दीजिये! नहीं तो सच्चा शैव वही हो सकता है जो वैष्णव मात्र को आपको देवता समझे। इसी भाँति यह भी समझना चाहिये कि गंगाजी परम शक्ति हैं इससे शैवों को शाक्तों के साथ भी विरोध अयोग्य है। यद्यपि हमारी समझ में तो आस्तिक मात्र को किसी से द्वेष-बुद्धि रखना पाप है, क्योंकि सब हमारे जगदीश ही की प्रजा हैं, सब हमारे खुदा ही के बन्दे हैं। इस नाते सभी हमारे आत्मीय बन्धु हैं पर शैव-समाज का वैष्णव और शाक्त लोगों से विशेष सम्बन्ध ठहरा। अतः इन्हें तो परस्पर महा मैत्री से रहना चाहिये। शिव-मूर्ति में अकेली गङ्गा कितना हित कर सकती हैं इसे जितने बुद्धिमान जितना विचारें उतना ही अधिक उपदेश प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए हम इस विषय को अपने पाठकों के विचार पर छोड़ आगे बढ़ते हैं।

बहुत मूर्तियों के पाँच मुख होते हैं जिससे हमारी समझ में यह आता है कि यावत संसार और परमार्थ का तत्व तो चार वेदों में आपको मिल जायगा, पर यह न समझियेगा कि उनका दर्शन भी वेद-विद्या ही से प्राप्त है। जो कुछ चार वेद सिखलाते हैं उससे भी उनका रूप उनका गुण अधिक है। वेद उनकी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाणी है। केवल चार पुस्तकों पर ही उस वाणी की इति नहीं है। एक मुख और है जिसकी प्रेम-मयी वाणी केवल प्रेमियों के सुनने में आती है। केवल विद्याभिमानी अधिकाधिक चार वेद द्वारा बड़ी हद चार फल (धर्मार्थ काम मोक्ष) पा जायँगे, पर उनके पंचम मुख सम्बन्धी सुख औरों के लिये है।

शिव-मूर्ति क्या है और कैसी है यह बात तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी नहीं कह सकते हम क्या हैं। पर जहाँ तक साधारणतया बहुत सी मूर्तियां देखने में आई हैं उनका कुछ वर्णन हमने यथामति किया, यद्यपि कोई बड़े बुद्धिमान इस विषय में लिखते तो बहुत सी उत्तमोत्तम बातें और भी लिखते, पर इतने लिखने से भी हमें निश्चय है किसी न किसी भाई का कुछ भला हो ही रहेगा। मरने के पीछे कैलाशवास तो विश्वास की बात है। हमने न कैलाश देखा है, न किसी देखने वाले से कभी वार्तालाप अथवा पत्र व्यवहार किया है। हां यदि होता होगा तो प्रत्येक मूर्ति के पूजक को ही रहेगा। पर हमारी इस अक्षरमयी मूर्ति के सच्चे सेवकों को संसार ही में कैलाश का सुख प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि जहाँ शिव हैं वहां कैलाश है। तो जब हमारे हृदय में शिव होंगे तो हमारा हृदय-मन्दिर क्यों न कैलाश होगा? हे विश्वनाथ! कभी हमारे हृदय मन्दिर को कैलाश बनाओगे? कभी वह दिन दिखाओगे कि भारतवासी मात्र केवल तुम्हारे हो जायं और यह पवित्र भूमि फिर कैलाश हो जाय?, जिस प्रकार अन्य धातु पाषाणादि निर्मित मूर्तियों का रामनाथ, वैद्यनाथ; आनन्देश्वर, खेरेश्वर आदि नाम होता है वैसे इस अक्षरमयी शिव-मूर्ति के अगणित नाम हैं। हृदयेश्वर, मङ्गलेश्वर, भारतेश्वर इत्यादि पर मुख्य नाम प्रेमेश्वर है। कोई महाशय प्रेम का ईश्वर न समझें। मुख्य अर्थ है कि प्रेममय ईश्वर। इनका दर्शन भी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रेम-चक्षु के बिना दुर्लभ है। जब अपनी अकर्मण्यता का और उनके एक एक उपकार का सच्चा ध्यान जमेगा तब अवश्य हृदय उमड़ेगा, और नेत्रों से अश्रुधारा वह चलेगी। उस धारा का नाम प्रेम-गङ्गा है। उसी के जल से स्नान कराने का महात्म्य है। हृदय-कमल उनके चरणों पर चढ़ाने से अक्षय पुण्य है। यह तो इस मूर्ति की पूजा है जो प्रेम के बिना नहीं हो सकती। पर यह भी स्मरण रखिये कि यदि आपके हृदय में प्रेम है तो संसार भर के मूर्तिमान और अमूर्तिमान सब पदार्थ शिव मूर्ति हैं, अर्थात् कल्याण का रूप है। नहीं तो सोने और हीरे की मूर्ति तुच्छ है। यदि उससे स्त्री का गहना बनवाते तो उसकी शोभा होती, तुम्हें सुख होता, भैयाचारे में नाम होता, बिपति काल में निर्बाह होता। पर मूर्ति से कोई बात सिद्ध नहीं हो सकती। पाषाण, धातु, मृत्तिका का कहना ही क्या है? स्वयं तुच्छ पदार्थ है। केवल प्रेम ही के नाते ईश्वर हैं, नहीं तो घर की चक्की से भी गये वीते, पानी पीने के भी काम के नहीं, यही नहीं प्रेम के बिना ध्यान ही में क्या ईश्वर दिखाई देगा? जब चाहो आँखें मूंद के अन्धे की नक़ल कर देखो। अन्धकार के सिवाय कुछ न सूझेगा। वेद पढ़ने में हाथ मुंह दोनों दुखेंगे। अधिक श्रम करोगे, दिमाग़ में गर्मी बढ़ जायगी। ख़ैर इन बातों के बढ़ाने से क्या है? जहाँ तक सहृदयता से विचार कीजियेगा वहाँ तक यही सिद्ध होगा कि प्रेम के बिना वेद झगड़े की जड़, धर्म बे शिर पैर के काम, स्वर्ग शेख़चिल्ली का महल, मुक्ति प्रेत की बहिन है। ईश्वर का तो पता ही लगना कठिन है। ब्रह्म शब्द ही नपुंसक अर्थात् है। और हृदय मन्दिर में प्रेम का प्रकाश है तो संसार शिवमय है क्योंकि प्रेम ही वास्तविक शिव-मूर्ति अर्थात् कल्याण का रूप है।

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गंगाजी

इन तीन अक्षरों से हमारे भारत को कितना सम्बन्ध है, यह सोचने बैठते हैं तो हमारा मन हिमालय से भी लम्बा चौड़ा और विचार-शक्ति तो गङ्गा नहीं, वरंच महासागर को लज्जित करने वाली हो जाती है। आहा! गङ्गा और भारत के सम्बन्ध को पूर्ण रूप से लिखना कोई हँसी खेल है? ऐसा भी कोई हिन्दू है जो दिन भर में इस नाम को मन वा वचन से न्यूनातिन्यून एक बार न लेता हो। ऐसा भी कोई काम है जिसमें गङ्गा जी का कुछ न कुछ प्रत्यक्ष वा प्रच्छन्न लगाव न हो। ऐसा भी किसी विषय का कोई ग्रन्थ है जिसमें किसी न किसी रीति से यह अक्षर न आए हों। नहीं नहीं, कदापि नहीं! भारत की तो गङ्गा प्राण है, शोभा है, वरंच सर्वस्व है! परमोत्तम पुरुषों के शिरोमुकुट हमारे मुनीश्वरों को ब्रह्म-प्राप्ति की बड़ी सुविधा गङ्गा ही से है—

गङ्गा तरंग कण शीकर शीतलानि,
विद्याधरायुषित चारु शिलातलानि।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहाँ तक कहिये, ब्रह्मद्रव, देवनदी इत्यादि नामों ही से टपकता है कि ऋषियों को जगत् से अनिच्छा होने पर भी गङ्गा से ममत्व था। ....सैकड़ों मन खाद्य वस्तुएँ गङ्गाजल से सीची जातीं हैं। सहस्रों ब्राह्मण गङ्गातट पर सुख से जीवन-यात्रा करते हैं। लाखों जीव-जन्तु गङ्गा में पलते हैं। फिर क्यों न गङ्गा माता कहीं जायँ? इधर यदि वेदों में "इमम्मे गंगे" इत्यादि मन्त्र हैं, पुराणों में एतद्विषयक बहुत सी कथाएँ हैं तो आल्हा में भी "गङ्गा किरिया रामदुहाई हम ना धरब पछाड़े पाँव" मौजूद है।

भक्तों के लिए नहाने और ठाकुर नहलाने को गङ्गा, व्यापारियों के लिए नावें आने-जाने को गङ्गा, सहृदयों के लिए सायंकाल हवा खाने को गङ्गा, अनेक प्रकार के रोगियों के लिए जल और बालुका द्वारा व्याधि हटाने को गंगा, बेईमानों के लिए बात-बात पर उठाने को गंगा, नगर भर का अघोर बहाने को गंगा, मृतकों की अन्त्येष्टि बनाने को गंगा, नए मतवालों के मुँह बिचकाने को गंगा, राह में मिशनरियों के वाज़ सुनाने को गङ्गा और हाय निर्दयी हत्यारों को मछली फँसाने के लिए जाल फैलाने को गंगा! प्यारे पाठकगण दूर तक समझ लीजिए, कहाँ २ कैसे २ किसको २ गङ्गा से प्रयोजन है! यद्यपि हमारे यहाँ बहुत-सी नदियाँ हैं, पर ऐसा सर्वव्यापी सम्बन्ध किसी का नहीं। जमुनाजी भगवान कृष्णचन्द्र के नाते पूजनीया मानी जाती हैं, पर हमारी गङ्गा की छोटी ही बहिन कहलाती हैं। ऐसी कोई सम्प्रदाय नहीं जिसमें गङ्गा न मानी जाती हों। ग्रन्थ के ग्रन्थ गङ्गाजी की महिमा से भरे पड़े हैं, और अब भी बनते ही चले जाते हैं।

हमारे बड़े-बड़े तीर्थ और बड़े-बड़े नगर बहुत ही थोड़े हैं जो गङ्गा पर न हों। जहाँ से गङ्गाजी दूर हैं वहाँ कोई कुंड वा कोई छोटी नदी का नाम गङ्गा-सम्बन्धी अवश्य होगा। हमारे बैसवाड़े

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में एक कहतूत है कि "का गंगै हाड़ लै जैहो", इससे मालूम होता है कि कभी किसी स्थान के हिन्दू, जिनसे गङ्गा बहुत दूर हैं, वे अपने प्रिय मृतकों की हड्डियाँ गंगा में पहुँचाना बड़ा उत्तम समझते होंगे। सभी नदियों के तटस्थ ब्राह्मण घाटिया इत्यादि कहाते हैं, पर गंगा के नाते लाखों ब्राह्मण गंगापुत्र के नाम से पुकारे जाते और, कैसे ही क्यों न हों, पुजाते हैं। क्यों न कहिये कि गंगा हमारी एक महत्तम प्रेमधार हैं। धन्य गंगे! सर्वदेवमयी गंगा जिन्होंने कहा है निहायत ठीक कहा है, क्योंकि—

शिव शिर मालति माल भगीरथ नृपति पुण्य फल,
ऐरावत, गज गिरिवर पबिनव कंठमालकल।
श्री हरिपद नख चन्द्रकांतमणि द्रवित सुधारस,
ब्रह्म कमण्डल मंडन भव-खंडन सुर सरवस।

—इत्यादि वाक्यों का स्मरण होते ही तबियत को ताज़गी होती, है। फिर तुम्हें अमृतमयी क्यों न मानें?

बहुतों का विश्वास है, बहुत पोथियों में लिखा है कि गंगा-स्नातक मरणानन्तर शिवत्व अथवा विष्णुत्व को प्राप्त होता है। श्रीमान् कविवर अब्दुल रहीम खाँ ख़ानख़ाना, जो अकबर के समय में संस्कृत और भाषा के बड़े अच्छे वेत्ता थे उनका एक श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

अच्चुत चरण तरंगिनि! शशिशेषर मौलि मालतीमाले।
मन तन वितरण समये हरता देया न मे हरता॥

अर्थात विष्णु बनाओगी तो मुझे कृतघ्नता का दोष होगा, क्योंकि तुम उनके चरण से निकली कहाती हो। अतएव शिव बनाना, जिसमें तुम्हें शिर पर धारण करूं। अन्य मतवाले देख लें कि अच्छे मुसलमान भी हमारी गंगा को क्या कहते हैं। फिर उन हिन्दुओं को हम क्या कहे जो गंगा की प्रीति नहीं करते!

Digitization by American Academy of Indic Studies: AAIS(USA)

हमारी समझ में मरने पर क्या होता है, यह नहीं आता। पर जीते जी ब्रह्मा, विष्णु, महेश बना देती हैं, यह तो हम प्रत्यक्ष दिखा देंगे। किनारे नहाने को खड़े हो तो पांव के नीचे गंगा बहती हैं, यह विष्णु भगवान् का चिह्न है। डुबकी लगाने के समय शिर के ऊपर से धारा बहती है, यह शिव जी का अंग है। बाहर निकलते ही मुख में वेद का कोई मंत्र वा वेदवंद्य परमेश्वर का कोई नाम होता है, जो ब्रह्म का रूप है। क्यों, तीनों हो गये? हमारे मित्र मुँशी कालीचरण साहब 'सेवक' कवि की एक सवैया इसी मतलब में है, यथा:—

सेवक तीर पै ठाढ़ो भयो पद द्वै बहि विष्णुता गंग दई है,
न्हात समय सिर ते कढ़ी ताछन शंकर लों शुभ शोभा भई है।
बाहर आय पढ़े श्रुति मंत्र तबै विधि को पद सांचौ हई है,
आय त्रिगामिनि तीर त्रितापिहु होत सदेह त्रिवेदमयी है।

बरंच हमारे रसिकों को इन्द्र-पदवी अधिक प्राप्त होती है क्योंकि हजार आंखें मिलती हैं, इसका अर्थ समझना मुश्किल नहीं है। अहा हा!

नजर आता है हरसू गुट परीयो हूरो गिलमा का।
मिलै है राहे गंगा में हमें रुतबा सुलेमां का।

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धोखा

इन दो अक्षरों में भी न जाने कितनी शक्ति है कि इनकी लपेट से बचना यदि निरा असम्भव न हो तो भी महा कठिन तो अवश्य है। जब कि भगवान रामचन्द्र ने मारीच राक्षस को सुवर्ण मृग समझ लिया था तो हमारी आपकी क्या सामर्थ्य है जो धोखा न खायँ? बरंच ऐसी ऐसी कथाओं से विदित होता है स्वयं ईश्वर भी केवल निराकार निर्विकार ही रहने की दशा में इससे पृथक् रहता है, सो भी एक रीति से नहीं ही रहता क्योंकि उसके मुख्य कामों में से एक काम सृष्टि का उत्पादन करना है, उसके लिए उसे अपनी माया का आश्रय लेना पड़ता है, और माया, भ्रम, छल इत्यादि धोखे ही के पर्याय हैं, इस रीति से यदि हम कहें कि ईश्वर भी धोखे से अलग नहीं है तो अयुक्त न होगा, क्योंकि ऐसी दशा में यदि वह धोखा खाता नहीं तो धोखे से काम अवश्य लेता है, जिसे दूसरे शब्द में कह सकते हैं कि माया का प्रपञ्च फैलता है वा धोखे की टट्टी खड़ी करता है।

अतः सब से प्रथक् रहने वाला ईश्वर भी ऐसा नहीं है, जिसके विषय में यह कहने का स्थान हो कि वह धोखे से अलग

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है, वरंच धोखे से पूर्ण उसे कह सकते हैं, और आश्चर्य तथा चित्रत्व को मोटी भाषा में धोखा ही कहते हैं, अथवा अवतार-धारण की दशा में उसका नाम माया-वपुधारी होता है, जिसका अर्थ है—धोखे का पुतला, और सच भी यही है, जो सर्वथा निराकार होने पर भी मत्स्य, कच्छपादि रूपों में प्रकट होता है, और शुद्ध निर्विकार कहलाने पर भी नाना प्रकार की लीला किया करता है वह धोखे का पुतला नहीं है तो क्या है ? हम आदर के मारे उसे भ्रम से रहित कहते हैं, पर जिसका सारा भेद स्पष्ट रूप से कोई जान ही नहीं सकता वह निर्भ्रम या भ्रमरहित क्योंकर कहा जा सकता है। शुद्ध निर्भ्रम वह कहलाता है, जिसके विषय में भ्रम का आरोप भी न हो सके; पर उसके तो अस्तित्व तक में नास्तिकों को संदेह और आस्तिकों को निश्चित ज्ञान का अभाव रहता है, फिर वह निर्भ्रम कैसा ? और जब वही भ्रम से पूर्ण है तब उसके बनाये संसार में भ्रम अर्थात् धोखे का अभाव कहाँ ?

वेदान्ती लोग जगत को मिथ्या भ्रम समझते हैं। यहां तक कि एक महात्मा ने किसी जिज्ञासु को भली-भांति समझा दिया था कि विश्व में जो कुछ है, और जो कुछ होता है, सब भ्रम है। किन्तु यह समझाने के कुछ ही दिन उपरांत उनके किसी प्रिय व्यक्ति का प्राणांत हो गया, जिसके शोक में वह फूट फूट कर रोने लगे। इस पर शिष्य ने आश्चर्य में आकर पूछा कि आप तो सब बातों को भ्रमात्मक मानते हैं, फिर जान बूझकर रोते क्यों हैं ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि रोना भी भ्रम ही है। सच है! भ्रमोत्पादक भ्रम स्वरूप भगवान के बनाये हुए भव (संसार) में जो कुछ है भ्रम ही है। जब तक भ्रम है तभी तक संसार है, वरंच संसार का स्वामी भी तभी तक है, फिर कुछ भी नहीं! और कौन जाने हो तो हमें उससे कोई काम नहीं! परमेश्वर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सब का भरम बनाये रक्खे, इसी में सब कुछ है। जहाँ भरम खुल गया, वहीं लाख की भलमंसी ख़ाक में मिल जाती है। जो लोग पूरे ब्रह्मज्ञानी बनकर संसार को सचमुच माया की कल्पना मान बैठते हैं वे अपनी भ्रमात्मक बुद्धि से चाहे अपने तुच्छ जीवन को साक्षात् सर्वेश्वर मानके सर्वथा सुखी हो जाने का धोखा खाया करें; पर संसार के किसी काम के नहीं रह जाते हैं, बरंच निरे अकर्ता, अभोक्ता बनने की उमंग में अकर्मण्य और "नारि नारि सब एक हैं जस मेहरि तस माय," इत्यादि सिद्धान्तों के मारे अपना तथा दूसरों का जो अनिष्ट न कर बैठें वही थोड़ा है, क्योंकि लोक और परलोक का मज़ा भी धोखे ही में पड़े रहने से प्राप्त होता है। बहुत ज्ञान छांटना सत्यानाशी की जड़ है! ज्ञान की दृष्टि से देखें तो आपका शरीर मलमूत्र, मांस,, मज्जादि घृणास्पद पदार्थों का विकारमात्र है, पर हम उसे प्रीति का पात्र समझते हैं, और दर्शन स्पर्शनादि से आनन्द लाभ करते हैं।

हमको वास्तव में इतनी जानकारी भी नहीं है कि हमारे सिर में कितने बाल हैं या एक मिट्टी के गोले का सिरा कहाँ पर है, किंतु आप हमें बड़ा भारी विज्ञ और सुलेखक समझते हैं, तथा हमारी लेखनी या जिह्वा की कारीगरी देख २ कर सुख प्राप्त करते हैं! विचार कर देखिये तो धन-जन इत्यादि पर किसी का कोई स्वत्व नहीं है, इस क्षण हमारे काम आ रहे हैं, क्षण ही भर के उपरांत न जाने किस के हाथ में वा किस दशा में पड़ के हमारे पक्ष में कैसे हो जायं, और मान भी लें कि इनका वियोग कभी न होगा तो भी हमें क्या ? आखिर एक दिन मरना है, और 'मूँदि गईं आंखे तब लाखें केहि काम की'। पर यदि हम ऐसा समझकर सब से सम्बन्ध तोड़ दें तो सारी पूँजी गंवाकर निरे मूर्ख कहलावें, स्त्री पुत्रादि का प्रबन्ध न

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS (USA)

करके उनका जीवन नष्ट करने का पाप मुड़ियावें ! 'ना हम काहू के कोऊ ना हमारा' का उदाहरण बनके सब प्रकार के सुख-सुविधा, सुयश से वंचित रह जावें ! इतना ही नहीं, वरंच और भी सोच कर देखिए तो किसी को कुछ भी खबर नहीं है कि मरने के पीछे जीव की क्या दशा होगी ?

बहुतेरों का सिद्धान्त यह भी है कि दशा किसकी होगी, जीव तो कोई पदार्थ ही नहीं है। घड़ी के जब तक सब पुरज़े दुरुस्त हैं, और ठीक ठीक लगे हुए हैं तभी तक उसमें खट खट, टन टन आवाज़ आ रही है, जहाँ उसके पुरज़ों का लगाव बिगड़ा वहीं न उसकी गति है, न शब्द है। ऐसे ही शरीर का क्रम जब तक ठीक ठीक बना हुआ है, मुख से शब्द और मन से भाव तथा इन्द्रियों से कर्म का प्राकट्य होता रहता है, जहां इसके क्रम में व्यतिक्रम हुआ वहीं सब खेल बिगड़ गया, बस फिर कुछ नहीं, कैसा जीव ? कैसी आत्मा ? एक रीति से यह कहना झूठ भी नहीं जान पड़ता, क्योंकि जिसके अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है उसके विषय में अन्ततोगत्वा योंही कहा जा सकता है ! इसी प्रकार स्वर्ग नर्कादि के सुख-दुःखादि का होना भी नास्तिकों ही के मत से नहीं, किन्तु बड़े बड़े आस्तिकों के सिद्धान्त से भी 'अविदित सुख दुःख निर्विशेष स्वरूपं' के अतिरिक्त कुछ समझ में नहीं आता।

स्कूल में हमने भी सारा भूगोल और खगोल पढ़ डाला है, पर नर्क और बैकुंठ का पता कहीं नहीं पाया। किन्तु भय और लालच को छोड़ दें तो बुरे कामों से घृणा और सत्कर्मों से रुचि न रख कर भी तो अपना अथच पराया अनिष्ट ही करेंगे। ऐसी २ बातें सोचने से गोस्वामी तुलसीदासजी का 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई' और श्री सूरदासजी का 'माया मोहनी मनहरन' कहना प्रत्यक्ष-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

तया सच्चा जान पड़ता है। फिर हम नहीं जानते कि धोखे को लोग क्यों बुरा समझते हैं? धोखा खाने वाला मूर्ख और धोखा देने वाला ठग क्यों कहलाता है? जब सब कुछ धोखा ही धोखा है, और धोखे से अलग रहना ईश्वर की भी सामर्थ्य से दूर है, तथा धोखे ही के कारण संसार का चर्खा पिन्न २ चला जाता है, नहीं तो ढिच्चर २ होने लगे, वरंच रही न जाय तो फिर इस शब्द का स्मरण वा श्रवण करते ही आपकी नाक-भौंह क्यों सुकड़ जाती हैं? इसके उत्तर में हम तो यही कहेंगे कि साधारणतः जो धोखा खाता है वह अपना कुछ न कुछ गंवा बैठता है, और जो धोखा देता है उसकी एक न एक दिन क़लई खुले बिना नहीं रहती है, और हानि सहना वा प्रतिष्ठा खोना दोनों बातें बुरी हैं, जो बहुधा इसके सम्बन्ध में हो ही जाया करती हैं।

इसी से साधारण श्रेणी के लोग धोखे को अच्छा नहीं समझते, यद्यपि उससे बच नहीं सकते, क्योंकि जैसे काजल की कोठरी में रहने वाला बेदाग़ नहीं रह सकता वैसे ही भ्रमात्मक भवसागर में रहने वाले अल्प सामर्थ्यी जीव का भ्रम से सर्वथा बचा रहना असम्भव है, और जो जिससे बच नहीं सकता उसका उसकी निंदा करना नीति-विरुद्ध है। पर क्या कीजिये, कच्ची खोपड़ी के मनुष्य को प्राचीन प्राज्ञगण अल्पज्ञ कह गये हैं, जिसका लक्षण ही है कि आगा पीछा सोचे बिना जो मुंह पर आवे कह डालना और जो जी में समावे कर उठना, नहीं तो कोई काम वा वस्तु वास्तव में भली अथवा बुरी नहीं होती, केवल उसके व्यवहार का नियम बनने बिगड़ने से बनाव बिगाड़ हो जाया करता है।

परोपकार को कोई बुरा नहीं कह सकता, पर किसी को सब कुछ उठा दीजिये तो क्या भीख मांग के प्रतिष्ठा, अथवा चोरी

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

करके धर्म खोइयेगा, वा भूखों मर के आत्महत्या के पापभागी होइयेगा ! योंही किसी को सताना अच्छा नहीं कहा जाता है, पर यदि कोई संसार का अनिष्ट करता हो उसे राजा से दंड दिलवाइए वा आपही उसका दमन कर दीजिए तो अनेकों लोगों के हित का पुण्य-लाभ होगा।

घी बड़ा पुष्टिकारक होता है, पर दो सेर पी लीजिए तो उठने बैठने की शक्ति न रहेगी, और संखिया सींगिया आदि प्रत्यक्ष विष हैं, किन्तु उचित रीति से शोधकर सेवन कीजिए तो बहुत से रोग दोख दूर हो जायंगे। यही लेखा धोखे का भी है। दो एक बार धोखा खाके धोखेबाज़ों की हिकमतें सीख लो, और कुछ अपनी ओर से झपकी फुंदनी जोड़ कर 'उसी की जूती उसी का सिर' कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली बरंच 'गुरु गुड़ ही रहा चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे। यदि इतना न हो सके तो उसे पास न फटकने दो तो भी भविष्य के लिए हानि और कष्ट से बच जाओगे।

योंही किसी को धोखा देना हो तो इस रीति से दो कि तुम्हारी चालबाज़ी कोई भांप न सके, और तुम्हारा बलि पशु यदि किसी कारण से तुम्हारे हथखंडे ताड़ भी जाय तो किसी से प्रकाशित करने के काम का न रहे। फिर बस, अपनी चतुरता के मधुर फल को मूर्खों के आंसू तथा गुरू-घंटालों के धन्यवाद की वर्षा के जल से धो और स्वादुपूर्वक खा ! इन दोनों रीतियों से धोखा बुरा नहीं है। अगले लोग कह गए हैं कि आदमी कुछ खोके सीखता है, अर्थात् धोखा खाए बिना अक्किल नहीं आती, और बेईमानी तथा नीति-कुशलता में इतना ही भेद है कि ज़ाहिर हो जाय तो बेईमानी कहलाती है और छिपी रहे तो बुद्धिमानी है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

काल

संसार में जो कुछ देखा सुना जाता है सब इन्हीं दो अक्षरों के अन्तर्गत है। इसका पूरा भेद पाना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है, क्योंकि यदि

'नृपति सेन सम्पति सचिव, सुत कलत्र परिवार।
करत सबन को स्वप्नसम, नमो काल करतार।।'

के अनुसार इसे ईश्वर का रूपान्तर न मानिये तौ भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अनादि और अनन्त एवं अनेक रूप-धारी तथापि अरूप यह भी है। इसी कारण बहुत से महात्माओं ने परमात्मा का नाम महाकाल रक्खा है। पर हमारी समझ में जो स्वयं महत्व-विशिष्ट है उसके नाम में 'महा' का शब्द जोड़ना व्यर्थ ही नहीं, किन्तु एक रीति से हँसी करना है। ब्राह्मण को महाब्राह्मण कहने से कोई प्रशंसा का द्योतन नहीं होता। केवल काल ही कहने से पूरी स्तुति हो जाती है। जिन्होंने परमात्मा को अकाल कहा है वे भी न जाने क्या समझे थे, नहीं तो जो सब काल में विद्यमान है वह अकाल क्यों? उसे तो नित्य कहना चाहिए। काल से यहाँ हमारा अभिप्राय मृत्यु से नहीं,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

किन्तु समय से है। मृत्यु का यह नाम केवल इसलिए पड़ गया है कि उसके लिए एक निश्चित और अटल काल नियत है। पर सूक्ष्म विचार से देखिये तो सभी बातें काल के अधीन हैं। वृक्ष लगा के सींचते सींचते सिर दे मारिये, जब तक उसके फलने का काल न आवेगा तब तक फल का दर्शन न होगा।

इसी प्रकार जिधर दृष्टि फैलाइये यही देखियेगा कि सब कुछ काल के अधीन है। बिना काल कभी कहीं कुछ हो ही नहीं सकता, यों उद्योग करना पुरुष का धर्म है। उसमें लगे रहो। आलस्य बड़ी बुरी बात है, उसे छोड़ो; पर यह भी स्मरण रक्खो कि काल बड़ा बली है। वह अपने अवसर पर सब कुछ करा लेता है, या यों कहिये कि आप कर लेता है। आप बड़े उद्योगी हैं, पर तन मन धन सब निछावर कर दीजिये, हम आप की ओर दृष्टि भी न करेंगे, साथ देना कैसा ? हम बड़े भारी आलसी हैं, पर जब पास पल्ले कुछ न रहेगा और स्वाभाविक आवश्यकताएँ सतावेंगी तब विवश हो हाथ-पाँव अथवा जिह्वा किसी काम में लगावेंगे, जिससे निर्वाह हो। इसीसे बुद्धिमान् लोग कह गये हैं कि मनुष्य को काल का अनुसरण करना चाहिए, जमाने के तेवर पहचानना चाहिए। जो लोग ऐसा नहीं करते वे या तो बीते हुए काल की दशा पर घमंड करके अपने लिए काँटे बोते हैं अथवा आगामी काल की कल्पित आशा में पड़ कर हानि सहते हैं। पर यह दोनों बातें मूर्खता की हैं। हमें चाहिए कि जो कुछ करना हो वर्त्तमान की गति के अनुसार करें। जो लोग अपने काल के अनेक पुरुषों की चाल ढाल परिवर्तित कर देने के लिए प्रसिद्ध हो गये हैं, वे वास्तव में साधारण व्यक्ति न थे। उन्हें मूर्ख समझिये चाहे मनीषी कहिये, पर वे थे बड़े। किन्तु उस बड़प्पन का कारण काल ही के अनुसरण पर निर्भर था। जिन्होंने यह विचार

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कर काम किया कि हमारे पूर्व इतने दिनों से जनता इस ढर्रे पर झुक रही है, अतः इधर ही के अनुकूल पुरुषार्थ दिखाना उत्तम होगा, उनकी मनोरथ-सिद्धि बड़ी सरलता से हुई; क्योंकि जिस बात को वे चलाना चाहते थे, उसके अवयव पहले ही से प्रस्तुत थे। इस कारण वे अपने काम में बड़े सन्तोष के साथ कृतकार्य हुए। पर जिन्होंने कालचक्र की चाल और सहकालीन लोगों की रुचि न पहचान कर; अपना काम फैलाया, वे मरने के पीछे चाहे जैसे गौरवास्पद हुए हों, उनके उत्तराधिकारी ने चाहे जितनी कृतकृत्यता प्राप्त की हो, पर अपने जीवन-काल को उन्होंने अपमान, कष्ट और हानि ही सहते सहते बिताया।

वे आज हमारी दृष्टि में प्रतिष्ठास्पद तो हैं, पर विचारशक्ति उनमें यह दोष लगा सकती है कि या तो उनमें जमाने के तेवर पहचानने की शक्ति न थी या जान बूझ कर नेचर के साथ लड़ाई ठान के वे उलझेड़े में पड़े। उपर्युक्त दोनों प्रकार के उदाहरण प्रत्येक देश के इतिहास में अनेक मिल सकते हैं, पर उन्हें न लिख के भी यदि हम अपने पाठकों से पूछें कि इन दोनों में आपको कौन मार्ग रुचता है तो हम निश्चय यही उत्तर पावेंगे कि काल की चाल के अनुकूल चलने वाला, क्योंकि सदा सब देशों में बड़े बड़े लोग थोड़े होते हैं जो प्रत्येक कष्ट और हानि का सामना करने को बद्ध-परिकर रहें, पर ऐसे लोगों की संख्या अधिक होती है जो साधारण रीति से संसार के नित्य नियमों का पालनमात्र अपनी सामर्थ्य का निचोड़ समझते हों; और ऐसे लोगों के लिए यही ढर्रा सुभीते का है कि जिधर अनेक सहकालिकों की मनोवृत्ति झुक रही हो उधर ही ढुलके रहना।

इसमें हानि अथवा निन्दा का भय नहीं है, वरञ्च यदि कम परिश्रम, सहनशीलता आदि में थोड़ी सी विशेषता निभ जाय तो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अपना तथा अपने लोगों का बड़ा भारी हित हो सकता है, महा-बली काल की सहायता मिलती रहती है।

इससे जिन्हें हमारे उपदेश कुछ रुचिकारक हों; उनसे हम अनुरोध करते हैं कि बड़े बड़े विचार छोड़ के यदि वे सचमुच देश-जाति का भला चाहते हों, तो तन मन धन, कुछ न हो सके तो वचन, से थोड़ा बहुत कोई ऐसा काम नित्य करते रहें जो वर्त्तमान समय के बहुत से लोगों ने अच्छा समझ रक्खा हो।

बस इसी में बहुत कुछ हो रहेगा। जिस काल में यह सामर्थ्य है कि सारे जगत के सर्वोत्कृष्ट प्रकाशक सूर्य को आधी रात के समय ऐसा अदृश्य करते हैं कि दूरबीन लगाने से भी न देख पड़े, जिसमें यह शक्ति है कि जड़-चेतनमात्र को प्रफुल्लित करने वाले, सबके जीवन के एकमात्र आधार, प्रातः पवन को जेठ बैसाख की दुपहरी में ऐसा बना देते हैं कि लोग उससे जी चुराते हैं, वह यदि तुम्हारा साथी होगा अथवा यों कहो कि तुम यदि उसके अनुगामी होगे, तो क्या कुछ न हो रहेगा ? उसकी वह महिमा है कि जो बातें कभी किसी के ध्यान में नहीं आतीं बरंच सोचने से असम्भव जँचती हैं उनके लिए ऐसे ऐसे योग लगा देता है कि एक दिन वैसा ही हो रहता है। ऐसे महा-सामर्थी से यह तो विचारना ही न चाहिए कि अमुक बात न हो सकेगी।

जो बित्ता भर के बालक को बली, धनी, विद्वान् मनुष्य और बड़े से बड़े मनुष्य-रत्न को राख का ढेर बना देता है, वह क्या नहीं कर सकता ? उसके तनिक से भ्रू-सञ्चालन में जो न हो जाय सो थोड़ा है। आपके शरीर में चाहे सहस्र हाथियों का बल हो, पर काल भगवान् एक दिन की अस्वस्थता में लाठी के सहारे उठने बैठने योग्य बना सकते हैं।

किसी के घर में लाखों की सम्पत्ति भरी हो, पर एक रात्रि में चोरों के द्वारा यह भिक्षा माँगने के योग्य कर सकते हैं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फिर इनके सामने किसका घमंड रह सकता है? जो लोग समझते हैं कि हमारा देश असुक असुक विषयों से दुखी है, उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि कालचक्र, समय का पहिया, प्रति क्षण घूमता ही रहता है और उसका नियम है कि जो आरा ऊपर है वह अवश्य नीचे आवेगा तथा जो नीचे है वह अवश्य ऊपर जायगा।

अतः रात्रि में यह सोचना कि दिन होहीगा नहीं, बज्र मूर्खता है। आप कुछ कीजिए अवश्य, तभी सब कुछ हो रहेगा, अनेक काम हैं जिनमें से एक एक में अनेक अनेक लोग लगे हुए हैं, आप भी किसी में जुट जाइये। पर इतना स्मरण रखियेगा कि जिस काम में काल की गति परखने वाले लगे हों, उसी में लगने से सुभीता रहेगा, विरुद्ध कार्यवाही में अनेक विघ्नों का भय है। यदि उन्हें झेल भी जाइये तो भी अपने जीते जी तो पहाड़ खोद के चूहा ही निकालियेगा, पीछे से चाहे जो हो, उसमें आपका इजारा नहीं। वह काल भगवान् की इच्छा पर निर्भर है। इसी से अगले लोग कह गये हैं कि काल का स्मरण सब काल करते रहना चाहिए।

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धरतीमाता

आजकल हमारे देश में गौमाता के गुण तथा उनकी रक्षा के उपाय एवं तज्जनित लाभ की चर्चा चारों ओर सुनाई देती है। यद्यपि दुष्ट प्रकृति के लोग उसमें बाधा करने से नहीं चूकते, और बहुत से कपटी रक्षक बन२ के भी भक्षक का काम करते हैं, अथवा कमर मज़बूत बांधके तन मन धन से इस विषय का उद्योग करने वाले भी श्री स्वामी आलाराम, श्रीमान् स्वामी और पंडित जगत-नारायण के सिवा देख नहीं पड़ते। नामवरी का लालच, आपस का वैमनस्य, सर्कार की स्वार्थपरता या बेपरवाई इत्यादि कई अड़चनें बड़ी भारी हैं; पर लोगों के दिलों पर इस बात का बीज पड़ गया है तो निश्चय है कि कभी न कभी कुछ न कुछ हो ही रहेगा। पर खेद का विषय है कि हमारी धरती माता की ओर अभी हमारे राजा प्रजा किसी का भी ध्यान नहीं है। हम अपने दिहाती भाइयों को देखते हैं तो सदा स्वच्छ वायु में रहते और परिश्रम करते एवं अनेक बलनाशक दुर्व्यसनों से बचते हुए भी अधिकांश निर्बल ही पाते हैं। यह बुद्धिमानों का महानुभूत सिद्धान्त है कि 'उत्तम खेती मध्यम बान, निषिद्ध चाकरी भीख निदान', पर आजकल कृषिजीवी ही लोग अधिक दरिद्री पाए

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जाते हैं। कितने शोक की बात है कि जिनके घर से हमारे नगर-वासी भाइयों को अन्न-वस्त्र मिलता है उन्हीं को रोटी-लंगोटी के लाले पड़े रहते हैं।

हमारे बुद्धिमान डाक्टर और हकीम जिन बातों को स्वास्थ्य-रक्षा का मूल बताते हैं उन्हीं कामों को दिन-रात करने वाले यथोचित रीति से हृष्ट पुष्ट न हों, इसका कारण क्या है? ईश्वर की इच्छा, काल की गति, वर्तमान राजा की नीति, चाहे जो कह लीजिये, पर इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि हमारे नाश का मुख्य कारण हमारी ही मूर्खता है। नहीं तो कुत्ते भी जहाँ बैठते हैं, वहाँ पूँछ हिला के बैठते हैं। पर हमने अपनी चाल उनसे भी बुरी कर रक्खी है कि जिस पृथ्वी पर रहते हैं उसी के बनने विगड़ने का ध्यान नहीं रखते। हमारे वे पूर्वज मूर्ख न थे जिन्होंने धरती को माता एवं शिवजी को आठ मूर्तियों में से एक मूर्ति कहा है, तथा उसके पूजन की आज्ञा दी है। वे भली भाँति जानते थे कि संसार में जितने पदार्थ हैं सबकी उत्पत्ति और लय इसी में और इसी से होती है।

हम सारे धर्माधर्म इसी पर करते हैं, हमारे सुख-भोग की सारी सामग्री हमें इसी से प्राप्त होती है। फिर इसके माता होने में क्या सन्देह है। यदि इस माता के प्रसन्न रखने में उद्योग न करते रहेंगे तो हमारी क्या दशा होगी? अब इस समय के अनेक विदेशी विद्वानों को भी निश्चय हो गया है कि यदि कोई पुरुष नित्य शरीर पर साफ़ चिकनी मिट्टी लगाया करे वा प्रतिदिन कुछ काल उसमें लोटा करे तो शरीर मस्तिष्क एवं हृदय को बड़ा लाभ पहुँचता है। हमारे यहाँ के अपठित लोग भी जानते हैं कि मट्टी देह को पालती है पर यदि हम मट्टी को शुद्ध न रक्खें, उसके अशुद्ध रखने वालों को न रोकें, शुद्ध मट्टी प्राप्त करने में आलस्य अथवा लोभ करें तो हमारा ही अपराध है कि नहीं? और उस

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अपराध से मट्टी लगाने तथा उसके लाभ उठाने से हम वंचित रहेंगे कि नहीं।

ऐसे ही मट्टी की तथा यावत् वस्तुओं की खानि हमारी धरती माता यदि निर्जीव होती रहेगी, जैसी आज कल हमारी बेपरवाई से होती जाती है तो इसमें भी कोई आश्चर्य है कि एक दिन हमारी जीवन-यात्रा ही कठिन हो जायगी, और जिन गऊमाता के लिए आप इतनी हाय २ कर रहे हैं उनका पालना भी महा दुर्घट हो जायगा। क्योंकि सबसे वड़ी तो यही धरतीमाता है। जब यही खाने को न देगी तब तक किसको कहाँ ठिकाना है। इसलिए देशवासी मात्र को चाहिए, यदि अपना और आगे आने वाली पीढ़ियों का सचमुच भला चाहते हैं तो सब बातों से पहिले धरती माता के प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें। फिर दूसरे काम तो सहज में हो जायँगे। आज हम देखते हैं कि हमारी भारतभूमि ऐसी बलिहीन तनछीन हो रही है कि जिधर देखो उधर—

खेती ना किसान को, भिखारी को न भीख कहूं,
बनिया की बनिज न चाकर को चाकरी,
जीविका-विहीन दीन छीन लोग आपस में,
एकन सों एक कहैं कहाँ जाई का करी।

—की दशा हो रही है। इस दशा में बड़े २ मनसूबे बांधना शेख़ चिल्ली के इरादे हैं! नहीं तो सम्पादकों, व्याख्यानदाताओं, लेखकों को चाहिये कि जहां और बातें सोचा करते हैं वहाँ धरती के पुष्ट रखने के उपाय भी सर्व साधारण को विदित करते रहें।

जड़ पदार्थ की पूजा के द्वेपी नेक विचार करें कि यदि इस पूजा में विमुख रहेंगे तो सारा धर्म और देशहितैषिता पोथियों ही में रह जायगी। मुख में बोलने की सामर्थ्य रहेगी नहीं, उस

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हालत में करते धरते कुछ न बनेगा। नहीं तो हमारे इस वाक्य पर विश्वास करो कि धरती है भगवती का रूप, इसके प्रसन्न रखने ही में सबका निर्वाह है, विश्वस्त बूढ़ों से सुनने में आया है कि अभी ४० ही ५० वर्ष हुए, जिन खेतों में सौ २ मन अन्न उपजता था उनमें अब ५०।६० मन मुश्किल से होता है! यह धरती माता की पूजा न होने ही का फल है। यदि हम अब भी न चेतेंगे तो आगे को और भी अनिष्ट की संम्भावना है। अतः अभी से धरती माता की पूजा का उद्योग कीजिए। दूसरों को उपदेश दीजिए, जी में विचारिए कि इनके प्रसन्न रखने को कैसी पूजा चाहिए। फिर उस पूजा की विधि का सब में प्रचार कीजिए यही परम कर्त्तव्य है। हमारे दूसरे भाई भी सोचें तो क्या बात है, पर सोचने समझने के साथ यह भी विचार लेना चाहिए कि "करनी सार है कथनी खुआर"।

जिन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेक्चर सुने होंगे उनको स्मरण होगा कि संस्कृत में वृक्ष को पादप कहते हैं। जिसका अर्थ है पाँव से पीने वाला अर्थात् उनके पाँव (जड़) में जल डालो तो वे पी लेते हैं। जैसे हम मुँह से जल दुग्धादिक पीते हैं तो वह सारे शरीर को शीतल कर देता है वैसे ही पेड़ की जड़ में पानी डालो तो उसके डाल-पात आदि को शीतल कर देता है, और पानी का जितना भाग पृथ्वी में होता है उसको वे स्वभावतः खींचा करते हैं। बड़े-बड़े आम, पीपल, महुवा आदि के पेड़ों को देखो वह बिना सींचे हरे रहते हैं। इसका कारण यही है कि वे धरती के स्वाभाविक जल को मूल द्वारा पीते रहते हैं इसी से जीवित रहते हैं और यह बात तो सब को विदित है कि पृथ्वी पर जितना जल है उसे सूर्यनारायण खींच लेते हैं। वही वर्षा में बरसा देते हैं। पर धरती में मिला हुआ या धरती के नीचे का जल सूर्य नहीं खींचते, क्योंकि धरती

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उस जल की आड़ है। इससे धरती के नीचे का जल खींचने में सूरज को वृक्षों से सहायता मिलती है। उन्होंने खींच के अपने पत्र पुष्पादि में भर लिया, और पत्रादि पर सीधी सूर्य की किरणें पड़ीं, बस धरती के नीचे का जल भी मेघमंडल में पहुँच गया ! विचार के देखिए तो नदी, ताल आदि से भी वृक्षों का जल शीघ्र सूर्यनारायण तक पहुँचता है, क्योंकि वह उनके अधिक पास हैं।

अब वाचकवृन्द विचार लें कि वृक्षों से धरती को कितनी तुष्टि होती है। वृष्टि के लिए वृक्षों से कितनी अधिक सहायता होती है। वृक्षों के निकट पवन भी शीतल और आरोग्यदायक होती है। यह बात अनपढ़े लोग भी देखते हैं कि जहाँ कई वृक्ष होते हैं वहाँ वहाँ जाने से ग्रीषम का महा कठिन ताप भी बहुत शीघ्र जाता रहता है। फिर इस बात में क्या संदेह है कि धरती माता के लिए वृक्षों की बड़ी आवश्यकता है। इसी विचार पर पुराने राजा लोग नगरों के आस पास बड़े बड़े जंगल रखते थे। खुशामदी टट्टू कह देते हैं 'अगले बन्दोबस्त राजा करना नहीं जानते थे, इससे उनके शहरों के इर्द-गिर्द जंगल पड़े रहते थे। यह नहीं जानते कि जंगलों से लाभ कितना होता था। लाखों प्रकार की औषधि बिन जोते-बोए हाथ आती थी। शिकार खेलने का बड़ा सुभीता रहता था, जिससे शस्त्र-संचालन का अभ्यास रहता था। पत्ते, फल, फूल, छाल, लकड़ी का किसी को दरिद्र न रहता था। यदि जंगलों से क्या फल होता है, यह लिखने बैठें तो यह लेख बहुत ही बढ़ जायगा। बुद्धिमान पाठक स्वयं समझ लें कि धरती माता को वृक्षों से क्या सुख मिलता है।

पर खेद है कि हमारी गवर्नमेंट ने हमारे देश के बन उजाड़ने पर कमर बाँध रक्खी है, और उसकी देखा-देखी हमारे छोटे-छोटे ज़मींदार भी अपनी भूमि में बीघा भर धरती

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भी पड़ी हुई देखते हैं तो किसानों को उठा देते हैं। जब से हमारे देश में वृक्षों का नाश होने लगा, तभी से हमारी धरती-माता जीर्ण हो गई। वर्षा की न्यूनता और रोगों की वृद्धि हो गई। यदि अब भी हमारे देशहितैषी भाई धरती का भला चाहते हैं तो वृक्ष और घास का नाश होना रोकें। लोगों को उपदेश देना, अपनी जमीन पर के पेड़ों को न काटना—सदा उनकी संख्या बढ़ाते रहना—सरकार से भी इस विषय में प्रार्थना करते रहना इत्यादि ही उपाय हैं। पीपल का वृक्ष पोला होता है, वह औरों से अधिक जल सींचता है। इसीसे उसका काटना वर्जित है। जहां तक हो सके उसको तो काटने से अवश्य ही बचाइए। बरगद, आंवला इत्यादि दूधवाले वृक्षों (जिनमें दूध निकलता है) से और भी अधिक उपकार है। आप जानते हैं, पानी की अपेक्षा दूध अधिक गुणकारी होता है, सो भी वृक्षों का दूध ! जिसका प्रत्यक्ष फल यह है कि बरगद का दूध, गूलर के फल निर्बलों के लिए बड़ी भारी दवा है। भला उनसे सूर्यनारायण कितनी सहायता पाते हैं, तथा उनके काटने से कितना धरतीमाता को दुःख होता है, इसको हम थोड़े से पत्र में कहां तक लिख सकते हैं ? हमारे रिखियों ने जेठ में वटपूजन एवं अन्यान्य मासों में दूसरे वृक्षों का पूजन कहा है, इसका हेतु यह था कि सूरज की प्रखर किरणें उनका दूध सुखा देती हैं वह घाटा उनकी जड़ में दूध डालके तथा फूल और अष्ट-गंध की सुगंध से पूरा करना चाहिये।

पर शोक है नये मतावलम्बियों की बुद्धि पर कि उन्होंने मूर्खता से ऐसी हिकमतों को जड़ वस्तु की उपासना समझा है ! अरे भाई अपना भला चाहो तो मतवाले न बनो। प्रत्येक वृक्ष की रक्षा, वृद्धि और सनातन रीति से जल दुग्धादि द्वारा उनको सींचना स्वीकार करो।

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आप

ले भला बतलाइए तो आप क्या हैं ? आप कहते होंगे, वाह आप तो आप ही हैं। यह कहाँ की आपदा आई ? यह भी कोई पूछने का ढँग है ? पूछा होता कि आप कौन हैं तो बतला देते कि हम आपके पत्र के पाठक हैं और आप ब्राह्मण-संपादक हैं, अथवा आप पंडितजी हैं, आप राजाजी हैं, आप सेठजी हैं, आप लालाजी हैं, आप बाबू साहब हैं, आप मियां साहब, आप निरे साहब हैं। आप क्या हैं ? यह तो कोई प्रश्न की रीति ही नहीं है। वाचक महाशय ! यह हम भी जानते हैं कि आप आप ही हैं, और हम भी वही हैं, तथा इन साहबों की भी लंबी धोती, चमकीली पोशाक, खुंटिहई अंगरखी, (मीरजई) सीधी मांग, विलायती चाल, लम्बी दाड़ी और साहबानी हवस ही कहे देती है कि—

"किस रोग की हैं आप दवा कुछ न पूछिए,"

अच्छा साहब, फिर हमने पूछा तो क्यों पूछा ? इसीलिए कि देखें आप "आप" का ज्ञान रखते हैं वा नहीं ? जिस 'आप' को आप अपने लिए तथा औरों के प्रति दिन रात मुंह पर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धरे रहते हैं, वह आप क्या है ? इसके उत्तर में आप कहिएगा कि एक सर्वनाम है। जैसे मैं, तू, हम, तुम, यह, वह आदि हैं वैसे ही आप भी है, और क्या है। पर इतना कह देने से न हमीं संतुष्ट होंगे न आपही के शब्दशास्त्र-ज्ञान का परिचय होगा, इससे अच्छे प्रकार कहिए कि जैसे 'मैं' का शब्द अपनी नम्रता दिखलाने के लिए बिल्ली की बोली का अनुकरण है, 'तू' का शब्द मध्यम पुरुष की तुच्छता व प्रीति सूचित करने के अर्थ कुत्ते के सम्बोधन की नक़ल है। हम तुम संस्कृत के अहं त्वं का अपभ्रंश हैं, यह वह निकट और दूर की वस्तु वा व्यक्ति के द्योतनार्थ स्वाभाविक उच्चारण हैं, वैसे 'आप' क्या है ? किस भाषा के किस शब्द का शुद्ध वा अशुद्ध रूप है, और आदर ही में बहुधा क्यों प्रयुक्त होता है ?

हुजूर की मुलाजमत से अक्ल ने इस्तेअफ़ा दे दिया हो तो दूसरी बात है, नहीं तो आप यह कभी न कह सकेंगे कि "आप लफ़्ज़े फ़ारसी या अरबीस्त," अथवा "ओः इटिज़ एनइ इंगलिश वर्ड," जब यह नहीं है तो खाहमख़ाह यह हिन्दी शब्द है, पर कुछ सिर पैर सूड़ गोड़ भी है कि योंही ? आप छूटते ही सोच सकते हैं कि संस्कृत में आप कहते हैं जल को, और शास्त्रों में लिखा है कि विधाता ने सृष्टि के आदि में उसी को बनाया था, तथा हिन्दी में पानी और फ़ारसी में आब का अर्थ शोभा अथच प्रतिष्ठा आदि हुवा करता है, जैसे "पानी उतरि गा तरवारिन को उइ करछुलि के मोल बिकायं", तथा "पानी उतरिगा रजपूती का उइ फिर बिसुऔते (वेश्या से भी) बहि जांय," और फ़ारसी में 'आबरू ख़ाक में मिला बैठे' इत्यादि।

इस प्रकार पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषों को भी उसी के नाम से आप पुकारने लगे होंगे। यह आपका समझना निरर्थक तो न होगा, बड़प्पन और आदर का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अर्थ अवश्य निकल आवैगा, पर खींचखांच कर, और साथ ही यह शंका भी कोई कर बैठे तो अयोग्य न होगी कि पानी के जल, बारि, अम्बु, नीर, तोय इत्यादि और भी तो कई नाम हैं उनका प्रयोग क्यों नहीं करते, "आप" ही के सुर्खाब का पर कहाँ लगा है ? अथवा पानी की सृष्टि सबके आदि में होने के कारण वृद्ध ही लोगों को उसके नाम से पुकारिए तो युक्तियुक्त हो सकता है, पर आप तो अवस्था में छोटों को भी आप आप कहा करते हैं, यह आपकी कौन सी विज्ञता है ? या हम यों भी कह सकते हैं कि पानी में गुण चाहे जितने हों, पर गति उसकी नीच ही होती है। तो क्या आप हमको मुंह से आप-आप करके अधोगामी बनाया चाहते हैं ? हमें निश्चय है कि आप पानीदार होंगे तो इस बात के उठते ही पानी पानी हो जायंगे, और फिर कभी यह शब्द मुँह पर भी न लावेंगे।

सहृदय सुहृद्गण आपस में आप आप की बोली बोलते भी नहीं हैं। एक हमारे उर्दूदां मुलाक़ाती मौखिक मित्र बनने की अभिलाषा से आते जाते थे, पर जब ऊपरी व्यवहार मित्रता का सा देखा तो हमने उनसे कहा कि बाहरी लोगों के सामने की बात न्यारी है, अकेले में अथवा अपनायतवालों के आगे आप आप न किया करो, इसमें भिन्नता की भिनभिनाहट पाई जाती है। पर वह इस बात को न माने, हमने दो चार बार समझाया, पर वह 'आप' थे, क्यों मानने लगे ? इस पर हमें झुंझलाहट छूटी तो एक दिन उनके आते ही और 'आप' का शब्द मुंह पर लाते ही हमने कह दिया कि आपकी ऐसी तैसी ? यह क्या बात है कि तुम मित्र बन कर हमारा कहना नहीं मानते ? प्यार के साथ तू कहने में जितना स्वादु आता है उतना बनावट से आप सांप कहो तो कभी सपने में नहीं आने का। इस उपदेश को वह मान गये। सच तो यह है कि प्रेम-शास्त्र में, कोई बंधन न होने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर भी, इस शब्द का प्रयोग बहुत ही कम, बरंच नहीं के बराबर होता है।

हिन्दी की कविता में हमने दो ही कवित्त इससे युक्त पाए हैं, एक तो आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिये', पर यह न तो किसी प्रतिष्ठित ग्रन्थ का है, और न इसका आशय स्नेह-सम्बद्ध है। किसी जले भुने कवि ने कह मारा हो तो यह कोई नहीं कह सकता कि कविता में भी "आप" की पूछ है। दूसरी घनानन्दजी की यह सवैया है—"आपही तौ मन हेरि हर्यो तिरछे करि नैनन नेह के चाव मैं" इत्यादि। पर यह भी निराशापूर्ण उपालम्भ है, इससे हमारा यह कथन कोई खंडन नहीं कर सकता कि प्रेम-समाज में "आप" का आदर नहीं है, तू ही प्यारा है।

संस्कृत और फ़ारसी के कवि भी त्वं और तू के आगे भवान् और शुमा (तू का बहुवचन) का बहुत आदर नहीं करते। पर इससे आपको क्या मतलब? आप अपनी हिन्दी के 'आप' का पता लगाइये, और न लगै तो हम बदला देंगे। संस्कृत में एक आप्त शब्द है, जो सर्वथा माननीय ही अर्थ में आता है, यहां तक कि न्यायशास्त्र में प्रमाण-चतुष्टय (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शाब्द) के अन्तर्गत शाब्द प्रमाण का लक्षण ही यह लिखा है कि 'आप्तोपदेशः शब्दः' अर्थात् आप्त पुरुष का वचन प्रत्यक्षादि प्रमाणों के सामान ही प्रामाणिक होता है, वा यों समझ लो कि आप्तजन प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण से सर्वथा प्रमाणित ही विषय को शब्द-बद्ध करते हैं। इससे जान पड़ता है कि जो सब प्रकार की विद्या, बुद्धि, सत्य-भाषणादि सद्गुणों से संयुक्त हो वह आप्त है, और देवनागरी भाषा में आप्त शब्द सब के उच्चारण में सहजतया नहीं आ सकता, इससे उसे सरल करके आप बना लिया गया है, और

मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुषों के अत्यन्त आदर का द्योतन करने में काम आता है। 'तुम बहुत अच्छे मनुष्य हो' और 'आप बड़े सज्जन हैं'—ऐसा कहने से सच्चे मित्र बनावट के शत्रु चाहे भले "पुलक प्रफुल्लित पूरित गाता" हो जायँ, पर व्यवहार-कुशल लोकाचारी पुरुष तभी अपना उचित सन्मान समझेंगे जब कहा जाय कि "आपका क्या कहना है, "आप तो सब कहीं बातों में एक ही हैं" इत्यादि।

अब तो आप समझ गए होंगे कि आप कहाँ के हैं, कौन हैं, कैसे हैं, यदि इतने बड़े बात के बतंगड़ से भी न समझे हों तो इस छोटे से कथन में हम क्या समझा सकेंगे कि 'आप' संस्कृत के आप्त शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, और सम्मानीय अर्थ को सूचनार्थ उन लोगों (अथवा एक ही व्यक्ति) के प्रति प्रयोग में लाया जाता है जो सामने विद्यमान् हों, चाहे बातें करते हों, चाहे बात करने वालों के द्वारा पूछे बताए जा रहे हों अथवा दो या अधिक जनों में जिनकी चर्चा हो रही हो। कभी कभी उत्तम पुरुष के द्वारा भी इसका प्रयोग होता है, वहाँ भी शब्द और अर्थ वही रहता है; पर विशेषता यह रहती है कि एक तो सब कोई अपने मन से आपको (अपने तईं) आप ही (आप ही) समझता है, और विचार कर देखिए तो आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता या तद्रूपता कहीं लेने भी नहीं जाने पड़ती, पर सब व्यवहार में अपने को आप कहने से यदि अहंकार की गंध समझिए तो यों समझ लीजिए कि जो काम अपने हाथ से किया जाता है, और जो बात अपनी समझ स्वीकार कर लेती है उसमें पूर्ण निश्चय अवश्य ही हो जाता है, और उसी के सिद्धि करने को हम और आप तथा यह पर्व में कहते हैं कि 'हम आप कर लेंगे' अर्थात् कोई संदेह नहीं है कि हमसे यह कार्य सम्पादित हो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जायगा, 'हम आप जानते हैं', अर्थात् दूसरे के बतलाने की आवश्यकता नहीं है, इत्यादि।

महाराष्ट्रीय भाषा के आपाजी भी उन्नीस विस्वा आप्त और आर्य के मिलने से इस रूप में हो गए हैं, तथा कोई माने या न माने, पर हम मना सकने का साहस रखते हैं कि अरबी के अब्ब (पिता बोलने में अब्बा) और यूरोपीय भाषाओं के पापा (पिता) पोप (धर्म-पिता) आदि भी इसी आप से निकले हैं। हाँ, इसके समझने समझाने में भी जी ऊबे तो अंगरेज़ी के एबाट (Abot महंत) तो इसके हुई हैं क्योंकि उस बोली में ह्रस्व और दीर्घ दोनों अकार का स्थानापन्न A है, और "पकार" का "बकार" से बदल लेना कई भाषाओं की चाल है। रही टी (T) सो वह तो "तकार" हुई है। फिर क्या न मान लीजिएगा कि एबाट साहब हमारे 'आप' बरञ्च शुद्ध आप्त से बने हैं।

हमारे प्रान्त में बहुत से उच्च वंश के बालक भी अपने पिता को अप्पा कहते हैं, उसे कोई २ लोग समझते हैं कि मुसलमानों के सहवास का फल है, पर यह उनकी समझ ठीक नहीं है, मुसलमान भाइयों के लड़के कहते हैं अब्बा, और हिन्दू सन्तान के पक्ष में 'बकार' का उच्चारण तनिक भी कठिन नहीं होता, यह अंगरेजों की तकार और फारस वालों की टकार नहीं है कि मुहीं से न निकले, और सदा मोती का मोटी अर्थात् स्थूलांगा स्त्री और खस की टट्टी का तत्ती अर्थात् गरम ही हो जाय। फिर अब्बा को अप्पा कहना किस नियम से होगा! हाँ, आप्त से आप और अप्पा तथा आपा की सृष्टि हुई है, उसी को अरबवालों ने अब्बा में रूपांतरित कर लिया होगा, क्योंकि उनकी वर्णमाला में "पकार" (पे) नहीं होती। सौ विस्वा बप्पा, बाप, बापू, बब्बा, बाबा, बाबू आदि भी इसी से निकले हैं, क्योंकि जैसे एशिया की कई

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बोलियों में 'पकार' को 'बकार' व 'फकार' से बदल देते हैं, जैसे पादशाह–बादशाह और पारसी–फारसी आदि, वैसे ही कई भाषाओं में शब्द के आदि में 'वकार' भी मिला देते हैं, जैसे वक्ते शब–बवक्तै शब तथा तंगआमद–बतंगआमद इत्यादि, और शब्द के आदि की ह्रस्व अकार का लोप भी हो जाता है जैसे अमावस का मावस, (सतसई आदि ग्रंथों में देखो) ह्रस्व अकारांत शब्दों में अकार के बदले ह्रस्व वा दीर्घ उकार भी हो जाता है, जैसे एक–एकु, स्वाद–स्वादु आदि। अयच ह्रस्व को दीर्घ दीर्घ को ह्रस्व अ, इ, उ, आदि की वृद्धि वा लोप भी हुआ ही करता है, फिर हम क्यों न कहें कि जिन शब्दों में अकार और पकार का संपर्क हो, एवं अर्थ से श्रेष्ठता की ध्वनि निकलती हो वह प्रायः समस्त संसार के शब्द हमारे आप महाराज वा आप ही के उलट फेर से बने हैं।

अब तो आप समझ गये न, कि आप क्या हैं? अब भी न समझो तो हम नहीं कह सकते कि आप समझदारों के कौन हैं! हाँ, आप ही को उचित होगा कि दमड़ी छदाम की समझ किसी पंसारी के यहां से मोल ले आइए, फिर आप ही समझने लगियेगा कि आप "को हैं? कहाँ के हैं? कौन के हैं?" यदि यह भी न हो सके, और लेख पढ़ के आपे से बाहर हो जाइए तो हमारा क्या अपराध है? हम केवल जी से कह देंगे "आप! आप न समझो तो आपां को के पड़ी है।" वै! अब भी नहीं समझे? वाह रे आप!

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बात

यदि हम वैद्य होते तो कफ और पित्त के सहवर्ती बात की व्याख्या करते तथा भूगोलवेत्ता होते तो किसी देश के जल-बात का वर्णन करते किन्तु इन दोनों विषयों में हमें एक बात के कहने का भी प्रयोजन नहीं है। हम तो केवल उसी बात के ऊपर दो चार बातें लिखते हैं जो हमारे तुम्हारे सम्भाषण के समय मुख से निकल-निकल के पर-पर-हृदयस्थ भाव को प्रकाशित करती रहती है। सच पूछिए तो इस बात की भी क्या बात है जिसके प्रभाव से मानव-जाति समस्त जीवधारियों की शिरोमणि—अशरफुलमख़लूक़ात—कहलाती है। शुकसारिकादि पत्ती केवल थोड़ी सी समझने योग्य बातें उच्चारित कर सकते हैं। इसी से अन्य नभचारियों की अपेक्षा आदृत समझे जाते हैं। फिर कौन न मान लेगा कि बात की बड़ी बात है। हाँ बात की बात इतनी बड़ी है कि परमात्मा को लोग निराकार कहते हैं तो भी इसका सम्बन्ध उसके साथ लगाये रहते हैं। वेद ईश्वर का वचन है, कुरानशरीफ़ कलामुल्लाह है, होली बाइबिल वर्ड आफ़ गॉड है; यह वचन, कलाम और वर्ड बात ही के पर्याय हैं जो प्रत्यक्ष में मुख के बिना स्थित नहीं कर सकती पर बात की महिमा के अनुरोध से सभी धर्मावलम्बियों ने "बिन बानी वक्ता बड़ योगी"

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वाली बात मान रक्खी है। यदि कोई न माने तो लाखों बातें बना के मानने पर कटिबद्ध रहते हैं। यहाँ तक कि प्रेम सिद्धान्ती लोग निरवयव नाम से मुँह बिचकावेंगे, "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता" पर हठ करने वाले को यह कहकर बातों में उड़ावेंगे कि "हम लँगड़े लूले हमारा प्यारा तो कोटि काम सुन्दर श्याम वर्ण विशिष्ट है"। निराकार शब्द का अर्थ श्री शालिगराम शिला है जो उसकी श्यामता का द्योतन करती है अथवा योगाभ्यास का आरम्भ करने वाले को आँखें मूँदने पर जो कुछ पहले दिखाई देता है वह निराकार अर्थात् बिलकुल काला रङ्ग है। सिद्धान्त यह कि रङ्ग रूप रहित रङ्ग को सब रङ्ग रङ्गित एवं अनेक रूप सहित ठहरावेंगे किन्तु कानों अथवा प्रानों वा दोनों को प्रेम रस से सिञ्चित करनेवाली उसकी मधुर मनोहर बातों के मज़े से अपने को वञ्चित न करने देंगे! जब परमेश्वर तक बात का प्रभाव पहुँचा हुआ है तो हमारी कौन बात रही? हम लोगों को तो 'गात माँहि बात करामात है'; नाना शास्त्र पुराण इतिहास काव्य कोश इत्यादि सब बात ही के फैलाव हैं। जिनके मध्य एक-एक बात ऐसी पाई जाती है जो मन बुद्धि चित्त को अपूर्व दशा में ले जानेवाली अथच लोक-परलोक में सब बात बनानेवाली है। यद्यपि बात का कोई रूप नहीं बतला सकता कि कैसा है, पर बुद्धि दौड़ाइए तो ईश्वर की भाँति इसके भी अगणित ही रूप पाइएगा। बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, खरी बात, खोटी बात, मीठी बात, कड़वी बात, भली बात, बुरी बात, सुहानी बात, लगती बात इत्यादि सब बात ही तो हैं! बात के काम भी इसी भाँति अनेक देखने में आते हैं। प्रीति, वैर, सुख, दुःख, श्रद्धा, घृणा, उत्साह, अनुत्साहादि जितनी उत्तमता और सहजतया बात के द्वारा विदित हो सकते हैं दूसरी रीति से वैसी सुविधा ही नहीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यहीं घर बैठे लाखों कोस का समाचार मुख और लेखनी से निर्गत बात ही बतला सकती है। डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में, चाहे जहाँ की जो बात हो, जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात अड़ती है, बात जमती है, बात उखड़ती है, हमारे-तुम्हारे भी सभी काम बात ही पर निर्भर हैं। "बातहि हाथी पाइए बातहि हाथी पाँव"—बात ही से पराये अपने और अपने पराये हो जाते हैं। मक्खीचूस उदार तथा उदार स्वल्पव्ययी, कापुरुष युद्धोत्साही एवं युद्धप्रिय, शान्ति शोक, कुमार्गी सुपथगामी, अथच सुपंथी कुराही इत्यादि बन जाते हैं। बात का तत्त्व समझना हर एक का काम नहीं है और दूसरों की समझ पर आधिपत्य जमाने योग्य बात गढ़ सकना ऐसों-वैसों का साथ नहीं है। बड़े-बड़े विज्ञवरों तथा महा-महा कवीश्वरों के जीवन बात ही के समझने और समझाने में व्यतीत हो जाते हैं। सहृदयगण की बात के आनन्द के आगे सारा संसार तुच्छ जँचता है। बालकों की तोतली बातें, मन्दिरियों की मीठी-मीठी प्यारी-प्यारी बातें, सत्कवियों की रसीली बातें, सुवक्ताओं की प्रभावशालिनी बातें, जिसके जी को और का और न कर दें उसे पशु नहीं पाषाण-खण्ड कहना चाहिए; क्योंकि कुत्ते-बिल्ली आदि को विशेष समझ नहीं होती तो भी पुचकार के तू-तू पूसी-पूसी इत्यादि बातें कह दो तो भावार्थ समझ के यथासामर्थ्य स्नेह-प्रदर्शन करने लगते हैं। फिर वह मनुष्य कैसा जिसके चित्त पर दूसरे हृदयवान् की बात का असर न हो। बात वह आदरणीय बात है कि भलेमानस बात और बाप को एक समझते हैं। हाथी के दाँत की भाँति उनके मुख से एक बार कोई बात निकल आने पर फिर कदापि नहीं पलट सकती।

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

हमारे परम पूजनीय आर्यगण अपनी बात का इतना पक्ष करते हैं कि 'तन तिय तनय धाम धन धरनी; सत्यसन्ध कहँ तृन सम बरनी' अथच 'प्रानन ते सुत अधिक है सुत ते अधिक परान, ते दूनों दशरथ तजे बचन न दीन्हों जान' इत्यादि उनकी अक्षर-संबद्धा कीर्ति सदा संसार-पट्टिका पर सोने के अक्षरों से लिखी रहेगी; पर आजकल के बहुतेरे भारत-कुपुत्रों ने यह ढङ्ग पकड़ रक्खा है 'मर्द की ज़बान और गाड़ी का पहिया चलता ही फिरता रहता है'। आज और बातें हैं, कल ही स्वार्थान्धता के वश हुज़ूरों की मरज़ी के मुवाफ़िक़ दूसरी बातें हो जाने में तनिक भी विलम्ब की सम्भावना नहीं है। यद्यपि कभी-कभी अवसर पड़ने पर बात के कुछ अंश का रङ्ग-ढङ्ग परिवर्तित कर लेना नीति-विरुद्ध नहीं है, पर कब? जात्योपकार (?) देशोद्धार आर्यकुलरत्नों के अनुगमन की सामर्थ्य नहीं है किन्तु हिन्दुस्तानियों के नाम पर कलङ्क लगाने को भी सहभागी बनने में घिन लगती है। इससे यह रीति अङ्गीकार कर रक्खी है कि चाहे कोई बड़ा बतकहा अर्थात् बातूनी कहे, चाहे यह समझे कि बात करने का भी शऊर नहीं है किन्तु अपनी मति के अनुसार ऐसी बातें बनाते रहना चाहिए जिनमें कोई न कोई किसी न किसी के वास्तविक हित की बात निकलती रहे पर खेद है कि हमारी बातें सुनने वाले उँगलियों ही पर गिनने भर को हैं। इससे बात बात में बात निकालने का उत्साह नहीं होता।। अपने जी को क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने इत्यादि विदग्धालापों की लेखनी से निकली हुई बातें सुना के कुछ फुसला लेते हैं और बिन बात की बात को बात का बतबढ़ समझके बहुत बात बढ़ाने से हाथ समेट लेना ही समझते हैं कि अच्छी बात है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

परीक्षा

यह तीन अक्षर का शब्द ऐसा भयानक है कि त्रैलोक्य की बुरी बला इसी में भरी है। परमेश्वर न करे कि इसका सामना किसी को पड़े! महात्मा मसीह ने अपने निज शिष्यों को एक प्रार्थना सिखाई थी, जिसको आज भी सब क्रिस्तान पढ़ते हैं, उसमें एक यह भी भाव है कि "हमें परीक्षा में न डाल, वरंच बुराई से बचा"। परमेश्वर करे सब की मुंदी भलमंसी चली जाय, नहीं तो उत्तम से उत्तम सोना भी जब परीक्षार्थ अग्नि पर रक्खा जाता है तो पहिले कांप उठता है, फिर उसके यावत् परिमाणु, सब छितर बितर हो जाते हैं। यदि कहीं कुछ खोट हुई तो जल ही जाता है, घट जाता है। जब जड़ पदार्थों की यह दशा है तब चैतन्यों का क्या कहना है! हमारे पाठकों में कदाचित् ऐसा कोई न होगा जिसने बाल्यावस्था में कहीं पढ़ा न हो महाशय उन दिनों का स्मरण कीजिए, जब इम्तहान के थोड़े दिन रह जाते थे। क्या सोते, जागते, उठते, बैठते हर घड़ी एक चिन्ता चित्त पर न चढ़ी रहती थी। पहिले से अधिक परिश्रम करते थे तो भी दिन रात देवी-देवता मनाते बीतता था। देखिए,

Digitization by American Academy of Indic Studies: AAIS(USA)

क्या हो, परमेश्वर कुशल करे। सच है, यह अवसर ही ऐसा है। परीक्षा में ठीक उतरना हर किसी के भाग्य में नहीं है!

जिन्हें हम आज बड़ा पंडित, धनी, बड़ा बली, महा देश-हितैषी, महा सत्यसंध, महा निष्कपट मित्र समझे बैठे हैं, यदि उनकी ठीक ठीक परीक्षा करने लगें तो कदाचित् फ़ी सैकड़ा दो ही चार ऐसे निकलें जो सचमुच जैसे बनते हैं वैसे ही बने रहें? वेश्याओं के यहाँ यदि दो चार मास आपकी बैठक रही हो तो देखा होगा, कैसे २ प्रतिष्ठित, कैसे २ सभ्य, कैसे कैसे धर्मध्वजी वहां जाकर क्या क्या लीला करते हैं! यदि महाजनों से कभी काम पड़ा हो तो आपको निश्चय होगा कि प्रगट में जो धर्म, जो ईमानदारी, जो भलमंसी दीख पड़ती है वह गुप्तरूपेण कै जनों में कहां तक है! जिन्हें यह विश्वास हो कि ईश्वर हमारे कामों की परीक्षा करता है, अथवा संसार में हमें परीक्षार्थ भेजा है उनके अन्तःकरण की गति पर हमें दया आती है। हमने तो निश्चय कर लिया है कि परीक्षा वरीक्षा का क्या काम है, हम जो कुछ हैं उस सर्वज्ञ सर्वांतरयामी से छिपा नहीं है। हम पापात्मा, पाप-संभव भला उसके आगे परीक्षा में कै पल ठहरेंगे?

संसार में संसारी जीव निस्सन्देह एक दूसरे की परीक्षा न करें तो काम न चले, पर उस काम के चलने में कठिनाई यह है है कि मनुष्य की बुद्धि अल्प है, अतः प्रत्येक विषय का पूर्ण निश्चय संभव नहीं। न्याय यदि कोई वस्तु है, और यह बात यदि निस्सन्देह सत्य है कि निर्दोष अकेला ईश्वर है तो हम यह भी कह सकते हैं कि जिसकी परीक्षा १०० बार कर लीजिए उसकी ओर से भी सन्देह बना रहना कुछ आश्चर्य नहीं है! फिर इस बात को कौन कहेगा कि परीक्षा उलझन का विषय नहीं है। कपटी ही लोग बहुधा मिष्टभाषी और शिष्टाचारी होते हैं, थोड़े

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ही मूल्य की धातु में अधिक ठनठनाहट होती है, थोड़ी ही योग्यता में अधिक आडम्बर होता है, फिर यदि परीक्षक धोखा खा जाय तो क्या अचंभा है। सब गुणों में पूरा अकेला परमात्मा है, अतः ठीक परीक्षा पर जिसकी क़लई न खुल जाय उसी के धन्य भाग! हमने भी स्वयं अनुभव किया है कि बरसों जिनके साथ बदनाम रहे, बीसियों हानियां सहीं, कई बार अपना सिर फुड़वाने को और प्राण देते या कारागार जाने को उद्यत हो गये, उनके दोष अपने ऊपर ले लिये, और वे भी सदा हमारी बात २ पर अपना चुल्लू भर लोहू सुखाते रहे, सदा कहते रहे, जहां तेरा पसीना गिरेगा वहां हमारा मृत शरीर पहले गिर लेगा, पर जब समय आया, कि ग़ैरों के सामने हमारी इज्ज़त न रहे, तो उन्हीं महाशयों ने कटी उङ्गली पर न मूता!

× × × ×

कहाँ तक कहें परीक्षा सब को खलती है! क्या ही अच्छा होता जो सब से सब बातों में सच्चे होते, और जगत् में परीक्षा का काम न पड़ा करता! वह बड़भागी धन्य है जो अपना भर-माला लिये हुए जीवन-यात्रा को समाप्त कर दे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वृद्ध

इन महापुरुष का वर्णन करना सहज काम नहीं है। यद्यपि अब इनके किसी अङ्ग में कोई सामर्थ्य नहीं रही अतः इससे किसी प्रकार की ऊपरी सहायता मिलना असम्भव सा है, पर हमें उचित है कि इनसे डरें, इनका सम्मान करें और इनके थोड़े से बचे-खुचे जीवन को गनीमत जानें; क्योंकि इन्होंने अपने बाल्यकाल में विद्या के नाते चाहे काला अक्षर भी न सीखा हो, युवावस्था में चाहे एक पैसा भी न कमाया हो तथापि संसार की ऊँच-नीच का इन्हें हमारी अपेक्षा बहुत अधिक अनुभव है; इसी से शास्त्र की आज्ञा है कि वयोधिक शूद्र भी द्विजाति के लिए माननीय है। यदि हममें बुद्धि हो तो इनसे पुस्तकों का काम ले सकते हैं, वरञ्च पुस्तक पढ़ने में आँखों की तथा मुख को कष्ट होता है, न समझ पड़ने पर दूसरों के पास दौड़ना पड़ता है, पर इनसे केवल इतना कह देना बहुत है कि हाँ, बाबा फिर क्या हुआ? हाँ, बाबा ऐसा हो तो कैसा हो? बस बाबा साहब अपने जीवन भर का आंतरिक कोष खोलकर रख देंगे। इसके अतिरिक्त इनसे डरना इसलिए उचित है कि हम क्या

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हैं, हमारे पूज्य पिता, दादा, ताऊ भी इनके आगे के छोकड़े थे। यदि यह बिगड़ें तो किसकी कलई नहीं खोल सकते ? किसके नाम पर गट्टा सी नहीं सुना सकते ? इन्हें सङ्कोच किसका है ? बक्की के सिवा इन्हें कोई कलंक ही क्या लगा सकता है ? जब यह आप ही चिता पर एक पाँव रखे बैठे हैं, क़ब्र में पाँव लटकाये हुए हैं, तब इनका कोई कर क्या सकता है ? यदि इनकी बातें-कुबातें हम न सहें तो करें क्या ? यह तनिक सी बात में कष्टित और कुंठित हो जायँगे और असमर्थता के कारण सच्चे जी से शाप देंगे, जो वास्तव में बड़े-बड़े तीक्ष्ण शस्त्रों की भाँति अनिष्ट-कारक होगा। जबकि महात्मा कबीर के कथनानुसार मरी खाल की हाय से लोहा तक भस्म हो जाता है तब इनकी पानी-भरी खाल की हाय कैसा कुछ असंगल नहीं कर सके ! इससे यही न उचित है कि इनके सच्चे अशक्त अंतःकरण का आशीर्वाद लाभ करने का उद्योग करें; क्योंकि समस्त धर्म-पंथों में इनका आदर करना लिखा है, सारे राजनियमों में इनके लिये पूर्ण दंड की विधि नहीं है और सोच देखिये तो यह दया-पात्र जीव हैं, क्योंकि सब प्रकार पौरुष से रहित हैं, केवल जीभ नहीं मानती, इससे आँय-बाँय-शाँय किया करते हैं या अपनी खटिया पर थूकते रहते हैं। इसके सिवा किसी का कुछ बिगाड़ते ही नहीं हैं। हाँ, इस दशा में दुनिया के झंझट छोड़ के भगवान् का भजन नहीं करते, वृथा चार दिन के लिए झूठी हाय हाय में कुढ़ते-कुढ़ाते रहते हैं। यह बुरा है। पर इसके लिए क्यों इनकी निन्दा की जाय ? आजकल बहुतेरे मननशील युवक कहा करते हैं कि बुड्ढे खबीसों के मारे कुछ नहीं होने पाता, वे अपनी पुरानी अकिल के कारण प्रत्येक देश-हितकारक नव विधान में विघ्न खड़ा कर देते हैं। हमारी समझ में यह कहनेवालों की भूल है, नहीं तो सब लोग एक ही से नहीं होते। यदि हिकमत के साथ राह पर लाये जायँ तो बहुत से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बुड्ढे ऐसे निकल आवेंगे, जिनसे अनेक युवकों को अनेक भाँति की मौखिक सहायता मिल सकती है। रहे वे बुड्ढे, जो सचमुच अपनी सत्यानाशी लकीर के फ़क़ीर अथवा अपने ही पापी पेट के गुलाम हैं। वे पहले हई कै जने ? दूसरे अब वह समय नहीं रहा कि उनके कुलच्चण किसी से छिपे हों। फिर उनका क्या डर ? चार दिन के पाहुन, कछुआ, मछली अथवा कीड़ों की परसी हुई थाली, कुछ अमरौती खाके आये हैं नहीं, कौवे के बच्चे हई नहीं, बहुत जियेंगे दस वर्ष। इतने दिन मर-पचके दुनिया भर का पीकदान बन के दस लोगों के तलवे चाटके अपने स्वार्थ के लिये पराये हित में बाधा करेंगे भी तो कितनी; सो भी जब देश-भाइयों का एक बड़ा समूह दूसरे ढर्रे पर जा रहा है तब आख़िर थोड़े ही दिन में आज मरे कल दूसरा दिन होना है। फिर उनके पीछे हम अपने सदुद्योगों में त्रुटि क्यों करें ? जब थोड़ी सी घातों की ज़िन्दगी के लिये वे अपना बेढंगापन नहीं छोड़ते तो हम अपनी वृहज्जीवनाशा में स्वधर्म क्यों छोड़ें ? हमारा यही कर्तव्य है कि उनकी शुश्रूषा करते रहें, क्योंकि भले हों वा बुरे; पर हैं हमारे ही, अतः हमें चाहिये कि अदब के साथ उन्हें संसार की अनित्यता अथवा ईश्वर, धर्म, देशोपकार एवं बंधुवात्सल्य की सभ्यता का निश्चय कराते रहें। सदा समझाते रहें कि हमारे तो तुम बाबा ही हो। अगले दिनों के ऋषियों की भाँति विद्यावृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध हो तो भी बाबा हो और बाबा लोगों की भाँति 'आपन पेट हाहू, मैं ना देहौं काहू' का सिद्धांत रखते हो तो भी वयोवृद्ध के नाते बाबा ही हो, पर इतना स्मरण रखो कि अब ज़माने की चाल वह नहीं रही, जो तुम्हारी जवानी में थी। इससे उत्तम यह

कि इस वाक्य को गाँठी बाँधो कि चाल वह चल कि 'पसेमर्ग' मुझे याद करें। काम वह कर कि ज़माने में तेरा नाम रहे—नहीं तो परलोक में बैकुँठ पाने पर भी उसे थूक २ के नरक बना लोगे,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस लोक का तो कहना ही क्या है। अभी थूक खखार देख कुटुंब वाले घृणा करते हैं, यदि वर्तमान करतूतें विदित हो गईं तो सारा जगत् सदा थुडू थुडू करेगा। यों तो मनुष्य की देह ही क्या है, जिसके यावदवयव घृणामय हैं, केवल बनाने वाले की पवित्रता के निहोरे श्रेष्ठ कहलाते हैं, नहीं तो निरी खारिज ख़राब हाल खाल की खलीती है, तिस पर भी यदि भगवच्चरणानुसरण एवं सदाचरण न हो सका तो हम क्या हैं राह चलने वाले तक धिक्कारेंगे और कहेंगे कि—'कहा धन धामै धरि लेहुगे सरा मैं भये जीरन तऊ रामै न भजत हौ'—यदि समझ जाओगे तो अपना लोक परलोक बनाओगे, दूसरों के लिये उदाहरण काम में लाओगे, नहीं तो हमें क्या है, हम तो अपनी वाली किये देते हैं, तुम्हीं अपने किये का फल पाओगे। लोग कहते हैं कि बारह बरस वाले को वैद्य क्या है ? तुम तो परमात्मा की दया से पँचगुने छगुने दिन भुगता बैठे हो, तुम्हें तो चाहिये कि दूसरों को समझाओ; पर यदि स्वयं कर्तव्याकर्तव्य न समझो तो तुम्हें तो क्या कहें हमारी समझ को धिक्कार है, जो ऐसे वाक्य-रत्न ऐसे कुत्सित ठौर पर फेंका करती है।

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दांत

इस दो अक्षर के शब्द तथा इन थोड़ी सी छोटी २ हड्डियों में भी उस चतुर कारीगर ने वह कौशल दिखलाया है कि किस के मुँह में दांत हैं जो पूरा २ वर्णन कर सके। मुख की सारी शोभा और यावत् भोज्य पदार्थों का स्वादु इन्हीं पर निर्भर है। कवियों ने अलक, (जुल्फ़) भ्रू (भौं) तथा बरुणी आदि की छवि लिखने में बहुत २ रीति से बाल की खाल निकाली है, पर सच पूंछिए तो इन्हीं की शोभा से सब की शोभा है। जब दातों के बिना पुपला सा मुंह निकल आता है, और चिबुक (ठोढ़ी) एवं नासिका एक में मिल जाती हैं उस समय सारी सुघराई मट्टी में मिल जाती है। नैन-बाण की तीक्षणता, भ्रू-चाप की खिंचावट और अलक-पन्नगी का विष कुछ भी नहीं रहता।

कवियों ने इसकी उपमा हीरा, मोती, माणिक से दी है। वह बहुत ठीक है, बरंच यह अवयव कथित वस्तुओं से भी अधिक मोल के हैं। यह वह अंग है जिसमें पाकशास्त्र के छहों रस एवं काव्यशास्त्र के नवों रस का आधार है। खाने का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मज़ा इन्हीं से है। इस बात का अनुभव यदि आपको न हो तो किसी बुड्ढे से पूछ देखिए, सिवाय सतुआ चाटने के और रोटी को दूध में तथा दाल में भिगोके गले के नीचे उतार देने के दुनियांभर की चीज़ों के लिए तरस ही के रह जाता होगा। रहे कविता के नौ रस, सो उनका दिग्दर्शनमात्र हम से सुन लीजिए:—

शृङ्गार का तो कहना ही क्या है! ऐसा कवि शायद कोई ही हो जिसने सुन्दरियों की दन्तावली तथा उनके गोरे गुदगुदे गोल कपोल पर रद-छद (दन्त-दाग़) के वर्णन में अपने क़लम की कारीगरी न दिखाई हो! आहा हा! मिस्सी तथा पान-रङ्ग रंगे अथवा योंही चमकदार चटकीले दांत जिस समय बातें करने तथा हंसने में दृष्टि आते हैं उस समय रसिकों के नयन और मन इतने प्रमुदित होजाते हैं कि जिनका वर्णन गूंगे को मिठाई है! हास्य रस का तो पूर्ण रूप ही नहीं जमता जब तक हंसते हंसते दांत न निकल पड़ें। करुणा और रौद्र रस में दुःख तथा क्रोध के मारे दांत अपने होंठ चबाने के काम आते हैं, एवं अपनी दीनता दिखाके दूसरे को करुणा उपजाने में दांत दिखाए जाते हैं। रिस में भी दांत पीसे जाते हैं। सब प्रकार के बीर रस में भी सावधानी से शत्रु की सैन्य अथवा दुःखियों के दैन्य अथवा सत्कीर्ति की चाट पर दांत लगा रहता है। भयानक रस के लिए सिंह-व्याघ्रादि के दांतों का ध्यान कर लीजिए, पर रात को नहीं, नहीं तो सोते से चौंक भागोगे। वीभत्स रस का प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो किसी जैनियों के जैनी महाराज के दांत देख लीजिए, जिनकी छोटी सी स्तुति यह है कि मैल के मारे पैसा चपक जाता है। अद्भुत रस में तो सभी आश्चर्य की बात देख सुनके दांत बाय, मुंह फैलाय

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

के हक्का बक्का रह जाते हैं। शान्त रस के उत्पादनार्थ श्री-शंकराचार्य स्वामी का यह पद महामंत्र है—

भज गोविंदं भज गोविंदं गोविंदं भज मूढ़मते।

सच है, जब किसी काम के न रहे तब पूछे कौन?

दांत खियाने खुर घिसे, पोठ बोझ नहिं लेइ।

जिस समय मृत्यु की दाढ़ के बीच बैठे हैं, जल के कछुए, मछली, स्थल के कौआ, कुत्ता आदि दांत पैने कर रहे हैं, उस समय में भी यदि सत चित्त से भगवान का भजन न किया तो क्या किया? आपकी हड्डियां हाथी के दांत तो हई नहीं कि मरने पर भी किसी के काम आवैंगी। जीते जी संसार में कुछ परमार्थ बना लीजिए, यही बुद्धिमानी है। देखिए, आपके दांत ही यह शिक्षा दे रहे हैं कि जबतक हम अपने स्थान, अपनी जाति (दन्तावली) और अपने काम में दृढ़ हैं तभी तक हमारी प्रतिष्ठा है। यहाँ तक कि बड़े २ कवि हमारी प्रशंसा करते हैं, बड़े २ सुन्दर मुखारविन्दों पर हमारी मोहर 'छाप' रहती है। पर मुख से बाहर होते ही हम एक अपावन, घृणित, और फेंकने योग्य हड्डी हो जाते हैं—

"मुख में मानिक सम दशन बाहर निकसत हाड़"

हम जानते हैं कि नित्य यह देखके भी आप अपने मुख्य देश भारत और अपने मुख्य सजातीय हिन्दू-मुसलमानों का साथ तन-मन-धन और प्रान-पन से क्यों नहीं देते? याद रखिए—

'स्थान भ्रष्टा न शोभंते, दंता केशा नखा नराः'।

हां, यदि आप इसका यह अर्थ समझें कि कभी किसी दशा में हिन्दुस्तान छोड़के विलायत जाना स्थान-भ्रष्टता है तो यह आपकी भूल है। हंसने के समय मुँह से दांतों का निकल पड़ना नहीं कहलाता, वरञ्च एक प्रकार की शोभा होती है। ऐसे ही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आप स्वदेश-चिन्ता के लिए कुछ काल देशान्तर में रह आएं तो आपकी बड़ाई है। पर हां, यदि वहां जाके यहाँ की ममता ही छोड़ दीजिए तो आपका जीवन उन दांतों के समान है जो होंठ या गाल कट जाने से अथवा किसी कारण-विशेष से मुंह के बाहर रह जाते हैं, और सारी शोभा खोके भेड़िए कैसे दांत दिखाई देते हैं। क्यों नहीं, गाल और होंठ दांतों का परदा है, जिसके परदा न रहा, अर्थात् स्वजातित्व की ग़ैरतदारी न रही, उसकी निरलज्ज ज़िंदगी व्यर्थ है। कभी आपको दाढ़ की पीड़ा हुई होगी तो अवश्य यह जी चाहा होगा कि इसे उखड़वा डालें तो अच्छा है। ऐसे ही हम उन स्वार्थ के अंधों के हक़ में मानते हैं जो रहें हमारे साथ, बनें हमारे ही देश-भाई, पर सदा हमारे देश-जाति के अहित ही में तत्पर रहते हैं! परमेश्वर उन्हें या तो सुमति दे या सत्यानाश करे। उनके होने का हमें कौन सुख? हम तो उनकी जैजैकार मनावेंगे जो अपने देशवासियों से दांत काटी रोटी का वर्ताव (सच्ची गहरी प्रीति) रखते हैं। परमात्मा करे कि हर हिन्दू-मुसलमान का देशहित के लिए चाव के साथ दांतों पसीना आता रहे। हमसे बहुत कुछ नहीं हो सकता तो यही सिद्धान्त कर रक्खा है कि—

'कायर कपूत कहाय, दांत दिखाय भारत तम हरौ',

कोई हमारे लेख देख दांतों तले उंगली दबाके सूझबूझ की तारीफ़ करे, अथवा दांत बाय के रह जाय, या अरसिकतावश यह कह दे कि कहां की दांताकिलकिल लगाई है तो इन बातों की हमें परवा नहीं है। हमारा दांत जिस ओर लगा है, वह लगा रहेगा, औरों की दंतकटाकट से हमको क्या?

× × × ×

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अतः हम इस दंतकथा को केवल इतने उपदेश पर समाप्त करते हैं कि आज हमारे देश के दिन गिरे हुए हैं, अतः हमें योग्य है कि जैसे बत्तिस दांतों के बीच जीभ रहती है वैसे रहें, और अपने देश की भलाई के लिए किसी के आगे दांतों में तिनका दबाने तक में लज्जित न हों, तथा यह भी ध्यान रक्खें कि हर दुनियादार की बातें विश्वास-योग्य नहीं है। हाथी के दांत खाने के और होते हैं, दिखाने के और।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

स्वतंत्र

हमारे बाबू साहब ने बरसों स्कूल की ख़ाक छानी है, बीसियों मास्टरों का दिमाग़ चाट डाला है, विलायत भर के ग्रन्थ चरे बैठे हैं; पर आज तक हिस्ट्री, जियोग्रफ़ी आदि रटाने में विद्या·विभाग के अधिकारीगण जितना समय नष्ट कराते हैं, उसका शतांश भी स्वास्थ्य-रक्षा और सदाचार-शिक्षा में लगाया जाता हो तो बतलाइए ! यही कारण है कि जितने बी० ए०, एम० ए०, देखने में आते हैं उनका शरीर प्रायः ऐसा ही होता है कि आंधी आवै तो उड़ जाय। इसी कारण उनके बड़े २ ख़यालात या तो देश पर कुछ प्रभाव ही नहीं डालने पाते वा उलटा असर दिखाते हैं। क्योंकि तन और मन का इतना दृढ़ सम्बन्ध है कि एक बेकाम हो तो दूसरा भी पूरा काम नहीं दे सकता, और यहाँ देह के निरोग रखने वाले नियमों पर आरंभ से आज तक कभी ध्यान ही नहीं पहुँचा। फिर काया के निकम्मेपन में क्या सन्देह है, और ऐसी दशा में दिल और दिमाग़ निर्दोष न हों तो आश्चर्य क्या है ! ऊपर से आपको अपने देश के जल-वायु के अनुकूल आहार-विहार आदि

Digitization by American Academy of Indic Studies- AAIS(USA)

नापसंद ठहरे। इससे और भी तन्दुरुस्ती में नेचर का शाप लगा रहता है। इस पर भी जो कोई रोग उभड़ आया तो चौगुने दाम लगाके, अठगुना समय गंवाके विदेशी ही औषधि का व्यवहार करेंगे, जिसका फल प्रत्यक्ष रूप से चाहे अच्छा भी दिखाई दे, पर वास्तव में धन और धर्म ही नहीं, बरंच देशीय रहन-सहन के विरुद्ध होने से स्वास्थ्य को भी ठीक नहीं रखता, जन्म-रोगीपने की कोई न कोई डिग्री अवश्य प्राप्त करा देता है !

यदि सौ जैंटिलमैन इकट्ठे हों तो कदाचित् ऐसे दस भी न निकलेंगे जो सचमुच किसी राजरोग की कुछ न कुछ शिकायत न रखते हों। इस दशा में हम कह सकते हैं कि आप-रूप का शरीर तो स्वतंत्र नहीं है, डाक्टर साहब के हाथ का खिलौना है। यदि भूख से अधिक डबल रोटी का चौथाई भाग भी खा लें वा ब्रॉंडी-देवी का चरणोदक आधा आउंस भी पी लें तो मरना जीना ईश्वर के आधीन है, पर कुछ दिन वा घंटों के लिए जमपुरी के फाटक तक अवश्य हो आवैंगे, और वहां कुछ भेंट चढ़ाए और 'हा हा, हू हू, का गीत गाए बिना न लौटेंगे। फिर कौन कह सकता है कि मिस्टर विदेशदास अपने शरीर से स्वतंत्र हैं ?

और सुनिए, अब वह दिन तो रहे ही नहीं कि देश का धन देश ही में रहता हो, और प्रत्येक व्यवसायी को निश्चय हो कि जिस वर्ष धंधा चल गया उसी वर्ष, वा जिस दिन स्वामी प्रसन्न हो गया उसी दिन, सब दुःख-दरिद्र टल जांयगे। अब तो वह समय लगा है कि तीन खाओ तेरह की भूख सभी को बनी रहती है। रोज़गार-व्यवहार के द्वारा साधारण रीति से निर्वाह होता रहे, यही बहुत है। विशेष कार्यों में व्यय करने के अवसर पर आज कल सैकड़ा पीछे दश जने भी ऐसे नहीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

देख पड़ते जो चिंता से व्यस्त न हो जाते हों। इस पर भी हमारे हिन्दुस्तानी साहब के पिता ने सपूतजी के पढ़ाने में भली चंगी रोकड़ उठा दी है।

इधर आपने जब से स्कूल में पांव रक्खा है तभी से विलायती वस्तुओं के व्यवहार की लत डालके ख़र्च बढ़ा रक्खा है। यों लेकचर देने में चाहे जैसी सुन लीजिए, पर बर्ताव देखिए तो पूरा सात समुद्र के पार ही का पाइएगा! इस पर भी ऐसे लोगों की संख्या इस देश में अब बहुत नहीं है, जो धाए धूपे बिना अपना तथा कुटुम्ब का पालन कर सकते हों। इससे बाबू साहब को भी पेट के लिए कुछ करना पड़ता है, सो और कुछ न कर सकते हैं, न करने में अपनी इज्ज़त समझते हैं। अतः हेर फेर कर नौकरी ही की शरण सूझती है। वहां भी काले रंग के कारण इनकी विद्या-बुद्धि का उचित आदर नहीं। ऊपर से भूख के बिना भोजन करने में स्वास्थ्य-नाश हो, खाने के पीछे झपट के चलने से रोगों की उत्पत्ति हो, तो हो, पर डिउटी पर ठीक समय में न पहुँचे तो रहें कहां?

बाज़े २ महकमों में अवसरः पड़ने पर न दिन छुट्टी न रात छुट्टी, पर छुट्टी का यत्न करें तो नौकरी ही से छुट्टी हो जाने का डर है। इस पर भी जो कहीं मालिक कड़े मिज़ाज़ का हुवा तो और भी कोढ़ में खाज है, पर उसकी झिड़की आदि न खाएँ तो रोटी ही कहां से खाएँ? यह छूतें न भी हों तो भी नौकरी की जड़ कितनी? ऐसी २ बातें बहुधा देखकर कौन न कहेगा कि काले रंग के गोरे मिजाज़वाले साहब अपने निर्वाहोपयोगी कर्तव्य में भी स्वतंत्र नहीं है।

अब घर की दशा देखिए तो यदि कोऊ और बड़ा बूढ़ा हुवा, और इनका दबैल न हुवा तौ तो जीभ से चिट्ठी का लिफ़ाफ़ा चाटने तक की स्वतंत्रता नहीं। बाहर भले ही जाति, कुजाति,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अजाति के साथ भच्छ, कुभच्छ, अभच्छ भच्छन कर आवें, पर देहली पर पांव धरते ही हिन्दू आचार का नाट्य न करें तो किसी काम के न रक्खे जायें। बहुत नहीं तो वाक्य-बाणों ही से छेद के छलनी कर दिए जायं। हयादार को इतना भी थोड़ा नहीं है। हां यदि 'एक लज्जाम्परित्यज त्रैलोक्य विजयी भवेत्' का सिद्धान्त रखते हों, और खाने भर को कमा भी लेते हों वा घर के करता धरता आपही हों तो इतना कर सकते हैं कि बबुआइन कोई सुशिक्षा दें तो उनको डांट लें, पर यह मजाल नहीं है कि उन्हें अपनी राह पर ला सकें, क्योंकि परमेश्वर की दया से अभी भारत की कुलांगनाओं पर कलियुग का पूरा प्रभाव नहीं हुवा। इससे उनमें सनातनधर्म, सत्कर्म, कुलाचार, सुव्यवहार का निरा अभाव भी नहीं है।

आप-सरूप भले ही तीर्थ, व्रत, देव, पितर आदि को कुछ न समझिए पर वे नंगे पांव माघ मास में कोसों की थकाहट उठाकर गंगा-यमुनादि का स्नान अवश्य करेंगी, हरतालिका के दिन चाहे बरसों की रोगिणी क्यों न हों, पर अन्न की कणिका वा जल की बूंद कभी मुंह में न धरेंगी, रामनौमी, जन्माष्टमी, पितृविसर्जनी आदि आने पर, चाहे जैसे हो, थोड़ा बहुत धर्मोत्सव अवश्य करेंगी। सच पूछो तो आर्य्यत्व की स्थिरता में वही अनेकांश श्रद्धा दिखाती हैं, नहीं आपने तो छब्बीसाक्षरी मंत्र पढ़ कर चुरुटाग्नि में सभी कुछ स्वाहा कर रक्खा है।

यद्यपि गृहेश्वरी के यजन-भजन का उद्देश्य प्रायः आप ही के मंगलार्थ होता है, पर आप तो मन और वचन से इस देश ही के न ठहरे। फिर यहां वालों के आंतरिक भाव कैसे समझें? बन्दर की ओर बरफी लेकर हाथ उठाओ तौ भी वह ढेला ही समझ कर खी, खी, करता हुआ भागेगा!

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बिचारी सीधी साधी अबला-बाला ने न कभी विधर्मी शिक्षा पाई है, न मुंह खोलके कभी मरते २ भी अपने पराए लोगों में नाना भांति की जटल्लें कहने सुनने का साहस रखती हैं। फिर बाबू साहब को कैसे लेक्चरबाज़ी करके समझा दें कि तोता मैना तक मनुष्य की बोली सीखके मनुष्य नहीं हो जाते, फिर आपही राजभाषा सीख कर कैसे राजजातीय हो जायंगे ? देह का रंग तो बदल ही नहीं सकते, और सब बातें क्यों कर बदल लीजिएगा ? हां, दूसरे की चाल चलकर कृतकार्य तो कोई हुवा नही, अपनी हंसी कराना होता है वही करा लीजिए।

अब यहां पर विचारने का स्थल है कि जहां दो मनुष्य न्यारे २ स्वभाव के हों, और एक की बातें दूसरे को घृणित जान पड़ती हों वहां चित्त की प्रसन्नता किस प्रकार हो सकती है। स्त्री चाहे धर्म के अनुरोध से इनकी कुचाल का सहन भी करले, पर लोक-लज्जा के भय से गले में हाथ डाल के सैर तो कभी न करैंगी, और ऐसा न हुआ तो इनका जन्म सफल होना असंभव है ! इससे मनही मन कुढ़ने वा बात २ पर खौ-खियाने के सिवा कुछ बन नही पड़ता, फिर कैसे कहिए कि आप अपने घर में स्वतंत्र हैं !

रही घर के बाहर की बात, वहां अपने ही टाइपवालों में चाहें जैसे गिने जाते हों, पर देश का अधिकांश न इनकी प्यारी भाषा को समझता है, न भेष पसंद करता है, न इनके से आंतरिक और वाह्यिक भावों से रुचि रखता है ! इससे वहुत लोग तो इनकी सूरत ही से क्रिष्टान जानकर मुँह बिचकाते हैं, इससे इनका बक २ झक २ करना देशवासियों पर यदि प्रभाव करे भी तो कितना कर सकता है। हां, जो लोग इनके सम्बन्धी हैं, और भली भांति ऊपरी व्यवहारों से परि-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चय रखते हैं वे कोट पतलून आदि देखके न चौकेंगे, किन्तु यदि इनके भोजन की खबर पा जायं तो क्षणभर में दूध की सी मक्खी निकाल बाहर करें। छुवा पानी पीना तो दूर रहा, इन्हें देखके मत्था पटकौवल (दुवा सलाम) तक के रवादार न हों। एक बार हमने एक मित्र से पूछा कि बहुत से अन्य धर्मी और अन्य-जाती हमारे आपके ऐसे मित्र भी हैं, जिनके समागम से जी हुलस उठता है, पर यदि कोई हमारा आपका भैयाचार, नातेदार वा परिचयी विधर्म्मी हो जाता है—विधर्मी कैसा, किसी नई समाज में नाम तक लिखा लेता है—तो उसे देखके घिन आती है। बोलने को जी नहीं चाहता। इसका क्या कारण है ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा था कि—वेश्याओं के यहां हम तुम जाते हैं कि कुछ काल जी बहलावेंगे, किन्तु यदि कोई अपनी सम्बन्धिनी स्त्री का, बाज़ार में जा बैठना कैसा, गुप्त रीति से भी वारविलासिनियों का सा तनिक भी आचरण रखती हुई सुन पड़े तो उसके पास बैठने वा बातें करने से जी कभी न बहलेगा, बरंच उसका मुँह देखके वा नाम सुनके लज्जा, क्रोध, घृणा आदि के मारे मन में आवैगा कि अपना और उसका जी एक कर डालें।

यों ही पर-पथावलम्बियों का भी हाल समझ लो। यह जीवधारियों का जाति-स्वभाव है कि इतरों में अपनायत का लेश पाकर जैसे अधिक आदर करते हैं वैसे ही अपनों में इतरता की गन्ध भी आती है तो जी बिगाड़ लेते हैं, और जहां एक मनुष्य को बहुत लोगों के रुष्ट हो जाने का भय लगा हो वहां स्वतंत्रता कहां ? अतः हमारे लेख के लक्ष्य महाशय कुटुम्ब की अपेक्षा देश-जाति वालों के मध्य और भी परतंत्र हैं।

यदि यह समझा जाय कि घर-दुवार, देश-जाति को तिलांजलि देकर जिनके साथ तन्मय होने के अभिलाषी हैं उनमें

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जा मिलें तो स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। यह आशा निरी दुराशा है। उच्च प्रकृति के अंगरेज़ ऐसों को इस विचार से तुच्छ समझते हैं कि जो अपनों ही का नहीं हुवा वह हमारा क्या होगा ? बुद्धिमानों की आज्ञा है कि जिसके साथ मित्रता करनी हो उसका पहिले यह पता लगा लो कि वह अपने पहिले मित्रों के साथ कैसा वर्ताव रखता था। रहे अनुदार स्वभाव वाले गौरांग, वह विद्या, बुद्धि, सौजन्य आदि पर पीछे दृष्टि करते होंगे, पहिले काला रंग देखकर और नेटिव नाम ही सुनकर घृणापात्र समझ लेते हैं। हां, अपना रुपया और समय नष्ट करके मानापमान का विचार छोड़ के साधारणों की स्तुति-प्रार्थनादि करते रहैं तो ज़बानी ख़ातिर वा मन के धन की कमी नहीं है,···फिर उसे पाके कोई सच्चा स्वतंत्र क्या होगा ?

इसके सिवा किसी से ऋण लें तो चुकाने में स्वतंत्रता नहीं, कोई राज-नियम के विरुद्ध काम कर बैठें तो दंड-प्राप्ति में स्वतंत्र नहीं, नेचर का विरोध करें तो दुःख सहने में स्वतंत्र नहीं, सामर्थ्य का तनिक भी उल्लंघन करने पर किसी काम में स्वतंत्र नहीं, कोई प्रबल मनुष्य, पशु, वा रोग आ घेरे तो जान बचाने में स्वतंत्र नहीं, मरने जीने में स्वतंत्र नहीं, कहां तक कहिए, अपने सिर के एक बाल को इच्छानुसार उजला, काला करने में स्वतंत्र नहीं, जिधर देखो परतंत्रता ही दृष्टि पड़ती है। पर आप अपने को स्वतंत्र ही नहीं, बरंच स्वतंत्रता का तत्वज्ञ और प्रचारकर्ता माने बैठे हैं ! क्या कोई बतला सकता है कि यह माया-गुलाम साहब किस बात में स्वतंत्र हैं ?

हां, हमसे सुनो, आप वेद-शास्त्र-पुराणादि पर राय देने में स्वतंत्र हैं, संस्कृत का काला अक्षर नहीं जानते, हिन्दी के भी साहित्य को ख़ाक धूल नहीं समझते, पर इसका पूरा ज्ञान रखते हैं कि वेद पुराने जंगलियों के गीत हैं, वा पुराण स्वार्थियों की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गढ़ी हुई झूठी कहानियां हैं, धर्मशास्त्र में ब्राह्मणों का पक्षपात भरा हुआ है, ज्योतिष तथा मन्त्र-शास्त्रादि ठग-विद्या हैं। ऐसी २ बे सिर-पैर की सत्यानाशी रागिनी अलापने में स्वतंत्र हैं। यदि ऐसी बातें इन्हीं के पेट में बनी रहें तो भी अधिक भय नहीं है, समझने वाले समझ लें कि थोड़े से आत्मिक रोगी भी देश में पड़े हैं, उनके लुढ़कते ही 'ख़सकम जहान पाक' हो जायगा। पर यह स्वतंत्रता के भुक्खड़ व्याख्यानों और लेखों के द्वारा भारत-संतानमात्र को अपना पिछलगा बनाने में सयत्न रहते हैं, यही बड़ी भारी खाध है।

यद्यपि इनके मनोरथों की सफलता पूरी क्या अधूरी भी नहीं हो सकती, पर जो इन्हीं के से कच्ची खोपड़ी और विलायती दिमाग़वाले हैं वह बकवास सुनते ही अपनी बन-गैली चाल में दृढ़ हो जाते हैं, और 'योंहीं रुलासी बैठी थी ऊपर से भैया आगया' का उदाहरण बन बैठते हैं, तथा इस रीति से ऐसों की संख्या कुछ न कुछ बढ़ रहती, और है सम्भव है कि योंही ढचरा चला जाय तो और भी बढ़कर भारतीयत्व के पक्ष में बुरा फल दिखावै।

वहीं विदेश के बुद्धिमान तनिक भी हमारे सद्विद्या-भंडार से परिचित होते हैं तो प्राचीनकाल के महर्षियों की बुद्धि पर बलि २ जाते हैं, बरंच बहुतेरे उनकी आज्ञा पर भी चलने लगते हैं, और इसके पुरस्कार में परमात्मा उन्हें सुख-सुयश का भागी प्रत्यक्ष में बना देता है, तथा परोक्ष के लिए अनन्त मङ्गल का निश्चय उनकी आत्मा को आप हो जाता है। यह देखकर भी जिस हिन्दू की आखें न खुलें, और इतना न सूझे कि जिन दिव्य रत्नों को दूर २ के परीक्षक भी गौरव से देखते हैं, उन्हें कांच बतलाना अपनी ही मनोदृष्टि का दोष दिखलाना वा अपने अग्रगन्ता की अतिमानुषी बुद्धि का वैभव जतलाना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है, और जो ऐसा साहस करने में स्वतंत्र बनता है उसके लिए विचारशीलमात्र कह सकते हैं कि यह स्वतंत्रता एक प्रकार का मालीखूलिया (उन्माद) है, जिसका लक्षण है— किसी बात वा वस्तु को कुछ का कुछ समझ लेना, वा बिन जानी बात में अपने को ज्ञाता एवं शक्ति से बाहर काम करने में समर्थ मान बैठना।

यह रोग बहुधा मस्तिष्क-शक्ति की हीनता से उत्पन्न होता है, और बहुत काल तक एक ही प्रकार के विचार में मग्न रहने से बद्धमूल हो जाता है। आश्चर्य नहीं कि स्वतंत्र देश के स्वतंत्रताचारियों ही की बातें लड़कपन से सुनते २ और अपनी रीति-नीति का कुछ ज्ञान-गौरव न होने पर दूसरों के मुख से उनकी निन्दा सहते २ ऐसा भ्रम हो जाता हो कि हम स्वतंत्र हैं, तथा इस स्वतंत्रता का परिचय देने में और ठौर सुभीता न देखकर अनबोल पुस्तकों ही के सिद्धान्तों पर मुँह मारना सहज समझकर ऐसा कर उठाते हों। इससे हमारी समझ में तो और कोई स्वतंत्रता न होने पर केवल इसी रीति की स्वतंत्रता को दिमाग़ का ख़लल समझना चाहिए। फिर भला जिनके विषय में हम इतना बक गए वह बुद्धि-विभ्रम के रोगी हैं वा स्वतंत्र हैं?

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

खुशामद

यद्यपि यह शब्द फ़ारसी का है, पर हमारी भाषा में इतना घुल-मिल गया है कि इसके ठीक भाव का बोधक, कोई हिन्दी का शब्द ढूंढ़ लावें तो हम उसे बड़ा मर्द गिनें। 'मिथ्या प्रशंसा', 'ठकुर सुहाती' इत्यादि शब्द गढ़े हुए हैं। इनमें वह बात ही नहीं पाई जाती जो इस मज़ेदार मोहनीमंत्रमें है। कारण इसका यह जान पड़ता है कि हमारे पुराने लोग सीधे, सच्चे, निष्कपट होते रहे हैं। उन्हें इसका काम ही बहुत कम पड़ता था। फिर ऐसे शब्द के व्यवहार का प्रयोजन क्या? जब से गुलाब का फूल, उर्दू की शीरीं ज़बान इत्यादि का प्रचार हुआ तभी से इस करामाती लटके का भी जोर खुला। सुभानल्लाह!! क्या कहना है। हुजूर खुश हो जायं और बन्दे की बहबूद हो। यारों के गुलछर्रे उड़ें। फिर इसके बराबर सिद्धि और काहे में है। आप चाहें कैसे कड़े मिज़ाज हों, रुखरुखा हों, मक्खीचूस ही क्यों न हो चार दिन झुक झुक के सलाम करेंगे दौड़-दौड़ आपके पास आवेंगे आपकी हां में हां मिलावेंगे, आपको देव, धनेश, हातिम, करण, सूर्य्य, चन्द्र-तैली, शीरीं इत्यादि बनावेंगे आप को ज़मीन पर से उठा के मांझे पर चढ़ावेंगे, फिर आसमान से आप कब तक राह पर न आवेंगे? इस भांति जैसी सिद्धि,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

निकम्मे, अविद्वान्, अकुलीन क्यों न हों, पर यदि हम लोक-लज्जा, परलोक-भय, सब को तिलांजली देके आप ही को अपना पिता, राजा, गुरू, पति, अन्नदाता कहते रहेंगे तो इसमें कुछ मीन-मेष नहीं है कि आप हमें अपनावेंगे और हमारे दुःख दरिद्र मिटावेंगे।

अजी साहब, आप तो आप ही हैं, हम दीनानाथ, दीनबन्धु, पतित-पावन कह कह के ईश्वर तक को फुसला लेने का दावा रखते हैं। दूसरे किस खेत की मूली हैं, खुशामद वह चीज़ है कि पत्थर को मोम बनाती है, बैल को दुह के दूध निकालती है। विशेषतः दुनियादार स्वार्थपरायण उदरंभर लोगों के लिए तो इससे बढ़के कोई रसायन ही नहीं है। जिसे यह चतुराक्षरी मंत्र न आया उसकी चतुरता पर छार है, विद्या पर धिक्कार है और गुणों पर फटकार है। यदि कैसा ही सज्जन, सुशील, सहृदय, निर्दोष, न्यायशील, नम्रस्वभाव, उदार सद्-गुणागार, साक्षात् सतयुग का औतार क्यों न हो, पर खुशामद न जानता हो तो इस ज़माने में तो उसकी मट्टी ख़्वार है। मरने के पीछे चाहे भले ही ध्रुव जी के मुकुट का मणि बनाया जाय और जो ख़ुशामद से रीझता न हो उसे भी हम मनुष्य तो नहीं कह सकते पत्थर का टुकड़ा, सूखे काठ का कुँदा या परमयोगी महाबैरागी कहेंगे। एक कवि का वाक्य है, कि 'वार पचै माछी पचै पाथर हू पचि जाय, जाहि ख़ुशामद पचि गई ताते कछु न बसाय'।

सच है ख़ुशामदी लोगों की बातें और घातें ही ऐसी होती हैं कि बड़े बड़ों को लुभा लेती हैं। सब जानते हैं कि यह अपने मतलब की कह रहा है, पर लच्छेदार बातों के मायाजाल में फँस बहुधा सभी जाते हैं। क्यों नहीं ? एक लेखे पूछो तो ख़ुशामदी भी एक प्रकार के ऋषि-मुनि होते हैं। अभी हमसे

Digitization by American Academy of Indic Studies- AAIS(USA)

कोई ज़रा सा नख़रा करे तो हम उरद के आटे की भांति ऐंठ जांय। (हमारे एक उजड्ड साथी का कथन ही है कि 'वरं हलाहल पानं सद्यः प्राण हरं विषं। नहिं दुष्ट धनाढ्यस्य भ्रूभृंग कुटिला ननः।') पर हमारे ख़ुशामदाचार्य महानुभाव सब तरह की झिड़की, निन्दा, कुबातें सहने पर भी हाथ ही जोड़ते रहते हैं। भला ऐसे मन के जीतनेवालों के मनोरथ क्यों न फलें। यद्यपि एक न एक रीति से सभी सब की ख़ुशामद करते हैं, यहां तक कि जिन्होंने सब तज हर भज का सहारा करके बनवास अंगीकार किया है, कंद मूल से पेट भरते हैं, भोज पत्रादि से काया ढकते हैं, उन्हें भी गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करनी पड़ती है। फिर साधारण लोग किस मुँह से कह सकते हैं कि हम ख़ुशामद नहीं करते वरंच यह कहना कि हमें ख़ुशामद करनी नहीं आती यह आलादरजे की ख़ुशामद है। जब आप अपने चेले को, नौकर को, पुत्र को, स्त्री को, ख़ुशामदी को नाराज़ देखते हैं और उसे राज़ी न रखने में धन, मान, सुख, प्रतिष्ठादि की हानि देखते हैं तब कहते हैं क्यों? अभी सिर से भूत उतरा है कि नहीं? यह भी उलटे शब्दों में ख़ुशामद है। सारांश यह कि ख़ुशामद से ख़ाली कोई नहीं है। पर ख़ुशामद करने की तमीज़ हर एक को नहीं आती। इतने बड़े हिन्दुस्तान भर में केवल चार-छः आदमी खुशामद के तत्ववेत्ता हैं। दूसरों की क्या मज़ाल है कि खुशामदी की पदवी ग्रहण कर सकें। हम अभी पाठकों को सलाह देते हैं कि यदि अपनी उन्नति चाहते हों तो नित्य थोड़ा-थोड़ा खुशामद का अभ्यास करते रहें। देशोन्नति दशोन्नति के पागलपन में न पड़ें नहीं तो हमारे ही तरह कठमुल्ला बने रहेंगे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

होली है

तुम्हारा सिर है! यहां दरिद्र की आग के मारे होला (अथवा होरा भुना हुवा हरा चना) हो रहे हैं इन्हें होली है, हें!

अरे कैसे मनहूस हो? दरस २ का तिवहार है, उसमें भी वही रोनी सूरत! एक वार तो प्रसन्न हो कर बोलो, होरी है!

अरे भाई हम पुराने समय के बंगाली भी तो नहीं हैं कि तुम ऐसे मित्रों की ज़बरदस्ती से होरी (हरि) बोलके शांत हो जाते। हम तो बीसवीं शताब्दी के अभागे हिन्दुस्तानी हैं, जिन्हें कृषि, वाणिज्य, शिल्प सेवादि किसी में भी कुछ तंत नहीं है। खेतों की उपज अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जंगलों का कट जाना, रेलों और नहरों की वृद्धि इत्यादि ने मट्टी करदी है। जो कुछ उपजता भी है वह कटके खलियान में नहीं आने पाता, ऊपर ही ऊपर लद जाता है! रुज़गार-व्यौहार में कहीं कुछ देखी नहीं पड़ता। जिन बाज़ारों में, अभी दस वर्ष भी नहीं हुए, कंचन बरसता था वहां अब दूकानें भांय २ होती हैं! देशी कारीगरी को देश ही वाले नहीं पूछते। विशेषतः जो छाती ठोंक २ ताली बजवा २ काग़ज़ों के तख़्ते रंग २ कर देशहित के गीत गाते फिरते हैं वह और भी देशी वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बईद समझते हैं। नौकरी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बी० ए०, एम० ए०, पास करने वालों को भी उचित रूप में मुश्किल से मिलती है। ऐसी दशा में हमें होली सूझती है कि दिवाली !

यह ठीक है । पर यह भी तो सोचो कि हम तुम वंशज किनके हैं ? उन्हीं के न, जो किसी समय वसंत-पंचमी ही से:—

"आई माघ की पांचैं बूढ़ी डोकरियां नाचैं"

का उदाहरण बन जाते थे, पर जब इतनी सामर्थ्य न रही तब शिवरात्रि से होलिकोत्सव का आरंभ करने लगे। जब इसका भी निर्वाह कठिन हुआ तब फागुन सुदी अष्टमी से—

"होरी मध्ये आठ दिन, ब्याह मांह दिन चार।
शठ पण्डित, वेश्या वधू सबै भए इकसार"

का नमूना दिखलाने लगे। पर उन्हीं आनंदमय पुरुषों के वंश में होकर तुम ऐसे मुहर्रमी बने जाते हो कि आज तिवहार के दिन भी आनन्द-बदन से होली का शब्द तक उच्चारण नहीं करते। सच कहो, कहीं होली बाइबिल की हवा लगने से हिन्दूपन को सलीब पर तो नहीं चढ़ा दिया ?

तुम्हें आज क्या सूझी है, जो अपने पराए सभी पर मुंह चला रहे हो ? होली बाइबिल अन्य धर्म का ग्रंथ है, उसके माननेवाले बिचारे पहिले ही से तुम्हारे साथ का भीतरी-बाहिरी सम्बन्ध छोड़ देते हैं। पहिली उमंग में कुछ दिन तुम्हारे मत पर कुछ चोट चला भी दिया करते थे, पर अब बरसों से वह चर्चा भी न होने के बराबर हो गई है ? ऐसी ही लड़ास लगी हो तो उनसे जा भिड़ो जो अभी तुम्हारे ही कहलाते हैं, तुम्हारे ही साथ रोटी-बेटी का व्यौहार रखते हैं, तुम्हारे ही दो चार मान्य ग्रन्थों के मानने वाले बनते हैं, पर तुम्हारे ही देवता पितर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इत्यादि की निन्दा कर करके तुम्हें चिढ़ाने ही में अपना धर्म और अपने देश की उन्नति समझते हैं।

अरे राम राम! पर्व के दिन कौन चरचा चलाते हो! हम तो जानते थे तुम्हीं मनहूस हो, पर तुम्हारे पास बैठे सो भी नसूढ़िया हो जाय। अरे बाबा दुनियाभर का बोझ परमेश्वर ने तुम्हीं को नहीं लदा दिया। यह कारखाने हैं, भले बुरे लोग और दुःख-सुख की दशा होती ही हुवाती रहती है। पर मनुष्य को चाहिए कि जब जैसे पुरुष और समय का सामना आ पड़े तब तैसा बन जाय। मन को किसी झगड़े में फंसने न दे।

आज तुम सचमुच कहीं से भांग खाके आए हो। इसी से ऐसी बेसिर-पैर की हांक रहे हो। अभी कल तक प्रेम-सिद्धान्त के अनुसार यह सिद्ध करते थे कि मन का किसी ओर लगा रहना ही कल्याण का कारण है, और इस समय कह रहे हो कि 'मन को किसी झगड़े में फंसने न दे'। वाह! भला तुम्हारी किस बात को मानें?

हमारी बात मानने का मन करो तो कुछ हो ही न जाओ! यही तो तुमसे नहीं होता। तुम तो जानते हो कि हम चोरी-चहारी सिखावेंगे।

नहीं यह तो नहीं जानते। और जानते भी हों तो बुरा न मानते। क्योंकि जिस काल में देश का अधिकांश निर्धन, निर्बल, निरुपाय हो रहा है, उसमें यदि लोग "बुभुक्षितः किं न करोति पापं" का उदाहरण बन जायं तो कोई आश्चर्य नहीं है। पर हां यह तो कहेंगे कि तुम्हारी बातें कभी २ समझ में नहीं आतीं। इससे मानने को जी नहीं चाहता।

यह ठीक है, पर याद रक्खो कि हमारी बातें मानने कामानस करोगे तो समझ में भी आने लगेंगी, और प्रत्यक्ष फल भी देंगी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अच्छा साहब मानते हैं, पर यह तो बतलाइए जब हम मानने योग्य ही नहीं हैं तो कैसे मान सकते हैं ?

छिः क्या समझ है ! अरे बाबा ! हमारी बातें मानने में योग्य होना और सकना आवश्यक नहीं है। जो बातें हमारे मुंह से निकलती हैं वह वास्तव में हमारी नहीं हैं, और उनके मानने की योग्यता और शक्ति हमको तुमको क्या किसी को भी तीन लोक और तीन काल में नहीं है। पर इसमें भी सन्देह न करना कि जो कोई चुपचाप आंखें मीच के मान लेता है वह परमानन्द-भागी हो जाता है।

हिहि ! ऐसी बातें मानने तो कौन आता है, पर सुनकर परमानन्द तो नहीं, हाँ, मसखरेपन का कुछ मज़ा ज़रूर पा जाता है !

भला हमारी बातों में तुम्हारे मुँह से हिहि तो निकली ! इस तोबड़ा से लटके हुए मुँह के टांकों के समान दो तीन दांत तो निकले। और नहीं तो, मसखरेपन ही का सही, मज़ा तो आया। देखो, आंखें मट्टी के तेल की रोशनी और कुल्हिया के ऐनक की चमक से चौंधिया न गई हों तो देखो ! छत्तिसौ जात, वरंच अजात के जूठे गिलास की मदिरा तथा भच्छ अभच्छ की गंध से अक्किल भाग न गई हो तो समझो। हमारी बातें सुनने में इतना फल पाया है तो मानने में न जाने क्या प्राप्त हो जायगा। इसी से कहते हैं, भैया मान जाव, राजा मान जाव, मुन्ना मान जावो। आज मन मारके बैठे रहने का दिन नहीं है। पुरखों के प्राचीन सुख-सम्पति को स्मरण करने का दिन है। इससे हँसो, बोलो, गाओ बजाओ, त्योहार मनाओ, और सब से कहते फिरो—होली है।

हो तो ली ही है। नहीं तो अब रही क्या गया है।

खैर, जो कुछ रह गया है उसी के रखने का यत्न करो, पर अपने ढङ्ग से, नकि विदेशी ढङ्ग से। स्मरण रक्खो कि जब तक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उत्साह के साथ अपनी ही रीति-नीति का अनुसरण न करोगे तबतक कुछ न होगा। अपनी बातों को बुरी दृष्टि से देखना पागलपन है। रोना निस्साहसों का काम है। अपनी भलाई अपने हाथ से हो सकती है। मांगने पर कोई नित्य डबल रोटी का टुकड़ा भी न देगा। इससे अपनपना मत छोड़ो। कहना मान जाव। आज होली है।

हां, हमारा हृदय तो दुर्दैव के वाणों से पूर्णतया होली (होल अंगरेजी में छेद को कहते हैं, उससे युक्त।) है ! हमें तुम्हारी सी जिंदादिली (सहृदयता) कहां से सूझे ?

तो सहृदयता के बिना कुछ आप कर भी नहीं सकते, यदि कुछ रोए पीटे दैवयोग से हो भी जायगा तो "नकटा जिया बुरे हवाल" का लेखा होगा। इससे हृदय में होल (छेद) हैं तो उनपर साहस की पट्टी चढ़ाओ। मृतक की भांति पड़े २ कांखने से कुछ न होगा। आज उछलने ही कूदने का दिन है। सामर्थ्य न हो तो चलो किसी हौली (मद्यालय) से थोड़ी सी पिला लावें, जिसमें कुछ देर के लिए होली के काम के हो जाओ, यह नेस्ती काम की नहीं।

वाह तो क्या मदिरा पिलाया चाहते हो ?

यह कलजुग है। बड़े २ बाजपेयी पीते हैं। पीछे से बल, वुद्धि, धर्म, धन, मान, प्रान सब स्वाहा हो जाय तो बला से ! पर थोड़ी देर उसकी तरङ्ग में "हाथी मच्छर, सूरज जुगनू" दिखाई देता है। इससे, और मनोविनोद के अभाव में, उसके सेवकों के लिए कभी २ उसका सेवन कर लेना इतना बुरा नहीं है जितना मृतचित्त बन बैठना। सुनिए ! संगीत, साहित्य, सुरा और सौंदर्य के साथ यदि नियम-विरुद्ध वर्ताव न किया जाय तो मन की प्रसन्नता और एकाग्रता कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

है, और सहृदयता की प्राप्ति के लिए इन दो गुणों की आवश्यकता है, जिनके बिना जीवन की सार्थकता दुःसाध्य है।

बलिहारी है, महाराज इस क्षणिक बुद्धि की। अभी तो कहते थे कि मन को किसी झगड़े में फंसने न देना चाहिए, और अभी कहने लगे कि मन की एकाग्रता के बिना सहृदयता तथा सहृदयता के बिना जीवन की सार्थता दुःसाध्य है! धन्य हैं, यह सरगापत्ताली बातें! भला हम आपको अनुरागी समझें या विरागी?

अरे हम तो जो हैं वही हैं, तुम्हें जो समझना हो समझ लो। हमारी कुछ हानि नहीं है। पर यह सुन रक्खो, सीख रक्खो, समझ रक्खो कि अनुराग और विराग वास्तव में एक ही हैं। जब तक एक ओर अचल अनुराग न होगा तब तक जगत के खटराग में विराग नहीं हो सकता, और जब तक सब ओर से आंतरिक विराग न हो जाय तब तक अनुराग का निर्वाह सहज नहीं है। इसी से कहते हैं कि हमारी बातें चुपचाप मान ही लिया करो, बहुत ही अक्किल को दौड़ा २ के थकाया न करो। इसी में आनन्द भी आता है, और हृदय का कपाट भी खुल जाता है। साधारण बुद्धिवाले लोग भगवान् भूतनाथ श्मसान-विहारी, मुँडमालाधारी को वैराग्य का अधिष्ठाता समझते हैं, पर वह आठों पहर अपनी प्यारी पर्वत-राजनंदिनी को वामांग ही में धारण किए रहते हैं, और प्रेमशास्त्र के आचार्य हैं। इसी प्रकार भगवान् कृष्णचन्द्र को लोग शृङ्गार रस का देवता समझते हैं, पर उनकी निर्लिप्तता गीता में देखनी चाहिए। जिसे सुनाके उन्होंने अर्जुन का मोह-जाल छुड़ाके वर्तमान कर्तव्य के लिए ऐसा दृढ़ कर दिया था कि उन्होंने सबकी दया-मया, मोह-ममता को तिलांजलि देके मारकाट आरंभ कर दी थी। इन बातों में तत्व-ग्राहिणी समझ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भली भांति समझ सकती है कि भगवान् प्रेमदेव की अनंत महिमा है। वहाँ अनुराग-विराग, सुख-दुःख, मुक्ति-साधन सब एक ही हैं। इसी से सच्चे समझदार संसार में रहकर सब कुछ देखते सुनते, करते धरते हुए भी संसारी नहीं होते। केवल अपनी मर्यादा में बने रहते हैं, और अपनी मर्यादा वही है जिसे सनातन से समस्त पूर्व-पुरुष रक्षित रखते आए हैं, और उनके सुपुत्र सदा मानते रहेंगे। काल, कर्म, ईश्वर अनुकूल हो वा प्रतिकूल, सारा संसार स्तुति करे वा निन्दा, वाह्य दृष्टि से लाभ देख पड़े वा हानि, पर वीर पुरुष वही है जो कभी कहीं किसी दशा में अपनेपन से स्वप्न में भी विमुख न हो। इस मूलमंत्र को भूल के भी न भूले कि जो हमारा है वही हमारा है। उसी से हमारी शोभा है, और उसी में हमारा वास्तविक कल्याण है।

एतदनुसार आज हमारी होली है। चित्त शुद्ध करके वर्ष-भर की कही-सुनी क्षमा करके हाथ जोड़ के, पांव पड़ के, मित्रों को मना के, बाहें पसार के उनसे मिलने और यथा-सामर्थ्य जी खोलके परस्पर की प्रसन्नता सम्पादन करने का दिन है। जो लोग प्रेम का तत्व तनिक भी नहीं समझते, केवल स्वार्थ-साधन ही को इतिकर्तव्य समझते हैं, पर हैं अपने ही देश जाति के, उनसे घृणा न करके ऊपरी आमोद-प्रमोद में मिला के समयान्तर में मित्रता का अधिकारी बनाने की चेष्टा करने का त्यौहार है। जो निष्प्रयोजन हमारी बात २ पर भुरकते ही हों उन्हें उनके भाग्य के आधीन छोड़के अपनी मौज में मस्त रहने का समय है। इसी से कहते हैं, नई बहू की नाईं घर में, न घुसे रहो, पर्व के दिन मन मार के न बैठो, घर बाहर, हेती व्यौहारी से मानसिक आनन्द के साथ कहते फिरो—हो ओ ओ ली ई ई ई है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सोने का डण्डा और पौंड़ा

देखने में सुवर्ण दंड ही सुन्दर है। ताप देखो सुलाख देखो तो स्वर्ण दंड ही अपनी खराई दिखलावेगा। उसका बनना और ताकना बड़ी कारीगरी, बड़े ख़र्च, बड़ी शोभा और बड़ी चिन्ता का काम है। पर हम पूछते हैं कि जो पुरुष भूखा है, जो भूख के मारे चाहता है कुछ ही मिल जाय, तो आत्मा शान्ति हो उसके लिए वह दंडा किस काम है? कदाचित बालक भी कह देगा कि कौड़ी काम का नहीं। यदि उसको बेचने जाय तो ख़रीदार मिलना मुशकिल है। साधारण लोग कहेंगे कहां का एक दरिद्र एक दम आगया जो घर की चीज़ें बेचे डालता है। कोई कहेगा कहाँ से उड़ा लाए? सच तो यह है, जो कोई ऐसा ही शौकीन आँख का अन्धा गांठ का पूरा मिलेगा तो ले लेगा। परन्तु भूखी आत्मा इतनी कल है कि स्वर्ण दंड से परंपरा द्वारा भी अपना जी समझा सके। क़दापि नहीं। इधर पौंडा को देखिये देखने में सुन्दरता व असुन्दरता का नाम नहीं, परीक्षा का काम नहीं लड़का भी जानता है कि मिठाइयों भर का बाप है। बनाने और बनवाने वाला संसार से परे है। लेके चलने में कोई

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शोभा है न अशोभा। ताकने में कोई बड़ा खट खट तो नहीं है। पहरा-चौकी, जागना-जूगना कुछ भी न चाहिये। पर कोई ताकने की आवश्यकता ही क्या है? जहाँ तक बिचारिए यही पाइएगा कि जितनी स्वर्ण दंड के सम्बन्ध में आपत्तियां हैं उससे कहीं चढ़ी बढ़ी इक्षु दंड के साथ निर्द्वन्दता है। विशेषत: क्षुधा क्लान्त के लिए वह ततक्षण शांतिदाता ही नहीं वरंच पुष्टिकारक सुस्वादुप्रद भी है।

पाठक महोदय! जैसे इस दृश्यमान संसार में स्वर्ण दंड और इक्षुदंड दशा देखते हो ऐसे ही हमारी आत्मसृष्टि में ज्ञान और प्रेम है। दुनियां में जाहिरी चमक दमक ज्ञान की बड़ी है। शास्त्रार्थों की कसौटी पर उसके ख़ूब जौहर खिलते हैं। संसारगामिनी बुद्धि ने उसके बनाने में बड़ी कारीगरी दिखलाई है। पांडित्याभिमान और महात्मान की शान उससे बड़ी शोभा पाती है। इससे हद है कि एक अपावन शरीरधारी, सर्वथा असमर्थ अन्न का कीड़ा रोग शोकादि का लतमर्द मनुष्य उसके कारण अपने को साक्षात ब्रह्म समझने लगता है। इससे अधिक ऊपरी महत्व और क्या चाहिए? पर जिन धन्य जनों की आत्मा धर्म-स्वादु की क्षुधा से लालायित होरही हैं; जिनके हृदय-नेत्र हरि-दर्शन के प्यासे हैं उनकी क्या इतने से तृप्ति हो जायगी कि शास्त्रों में ईश्वर ने ऐसा लिखा है, जीव का यह कर्त्तव्य है, इस कर्म का यह फल है, इत्यादि से आत्मा शांति होजायगी? हमतो जानते हैं शांति के बदले यह विचार और उलटी घबराहट पैदा करेगा कि हाय हमें यह कर्तव्य था, पर इन इन कारणों से न कर सके। अब हम कैसे क्या करेंगे? यदि यह भयानक लहरें जी में उठीं तो जन्म भर कर्म-कांड और उपासना-कांड के झगड़ों से छुट्टी नहीं। और जो न उठीं तो मानो आत्मा निरी निर्जीव है। भूख का बिलकुल न लगना शरीर के लिए अनिष्ठ

Digitization by American Academy of Indic Studies: AAIS(USA)

है। तो अपने कल्याणों की प्रगाढ़ेच्छा न होना आत्मा के लिए क्योंकर श्रेयस्कर कहें।

किसी महात्मा का वचन है कि 'वे लोग धन्य हैं जो धर्म के लिए भूखे और प्यासे हैं, क्योंकि वे तृप्त किए जायंगे, सो तृप्त होना शुष्क ज्ञानरूपी स्वर्ण दंड से कदापि संभव नहीं, क्योंकि सोना स्वयं खाद्य वस्तु नहीं है। ऐसा ही ज्ञान भी केवल सुखद मार्ग का प्रदर्शक मात्र है, कुछ सुख स्वरूप नहीं है। वरंच वहुधा दुःखदायक हो जाता है। पर, हां, ईश्वर के अमित अनु-ग्रह से स्वयं रसमय निश्चित अलौकिक और अकृत्रिम प्रेम भी हमारे हृदय-क्षेत्र में रक्खा गया है जिसके किंचित सम्बन्ध से हम तृप्त हो जाते हैं; आंतरिक दाह का नाश हो जाता है। ईश्वर तो ईश्वर ही है। किसी सांसारिक वस्तु का क्षणस्थाई और कृत्तिम प्रेम कैसा आनन्दमय है कि उसके लिये कोटि दुःख भी हो जाते हैं। और प्रेम-पात्र की प्राप्ति तो दूर रही, उसके ध्यान मात्र से हम अपने को भूल के आनन्दमय हो जाते हैं। जैसे यावत मिष्ठान्न का जनक इक्षु दंड है, वैसे ही जितने आनन्द हैं सब का उत्पादक प्रेम है। तत्क्षण शांति और पुष्टिदाता यह इस समय प्रेम ही है जिसकी केवल एक देशी तुच्छातितुच्छ सादृश्य गन्ने से दे सकते हैं, यद्यपि वास्तविक और यथोचित सादृश्य के योग्य तो अमृत भी नहीं है। प्रिय पाठक तुम्हारी आत्मा धर्म की भूखी है कि नहीं ? यदि नहीं है तो सत्संग और सद्ग्रन्थावलोकन द्वारा इस दुष्ट रोग को नाश करें। हाय हाय ! आत्मश्रेय के लिए व्याकुल न हुआ तो चित्त काहे को, पत्थर है। नहीं हमारे रसिक अवश्य हरि रस के प्यासे हैं उनसे हम पूंछते हैं क्यों भाई ! तुम अपने लिये रुक्ष स्वर्ण दंड को उत्तम समझते हो अथवा रसीले पौंडे को।

——

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'ट'

इस अक्षर में न तो 'लकार' का सा लालित्य है, न 'दकार' का सा दुरूहत्व, न 'मकार' का सा ममत्व-बोधक गुण है; पर विचार कर के देखिए तो शुद्ध स्वार्थपरता से भरा हुवा है! सूक्ष्म विचारके देखो तो फ़ारस और अरब की ओर के लोग निरे छल के रूप, कपट की मूरत नहीं होते, अप्रसन्न होके मरना मारना जानते हैं, जबरदस्त होने पर निर्बलों को मनमानी रीति पर सताना जानते हैं, बड़े प्रसन्न हों तो तन, मन, धन से सहाय करना जानते हैं, जहाँ और कोई युक्ति न चले वहां निरी खुशामद करना जानते हैं, पर अपने रूप में किसी तरह का बट्टा न लगने देना और रसाइन के साथ धीरे धीरे हंसा खिलाके अपना मतलब गांठना, जो नीति का जीव है, उसे बिलकुल नहीं जानते।

इतिहास लेके सब बादशाहों का चरित्र देख डालिए। ऐसा कोई न मिलेगा जिसकी भली या बुरी मनोगति बहुत दिन तक छिपी रह सकी हो। यही कारण है कि उनकी वर्णमाला में टवर्ग हई नहीं। किसी फारसी से टट्टी कहलाइए तो मुँह बीस

Digitization by American Academy of Indic Studies: AAIS(USA)

कोने का बनावेगा, पर कहेगा तत्ती। टट्टी की ओट में शिकार करना जानते ही नहीं, उन बिचारों के यहां 'टट्टा' का अक्षर कहां से आवे। इधर हमारे गौरांगदेव को देखिए। शिरपर हैट, तन पर कोट, पावों में प्येंट, और बूट, ईश्वर का नाम आल्मा-इटी, (सर्वशक्तिमान) गुरू का नाम ट्यूटर, मास्टर (स्वामी को भी कहते हैं) या टीचर, जिससे प्रीति हो उसकी पदवी मिस्ट्रेस, रोज़गार का नाम ट्रेड, नफ़ा का नाम बेनीफ़िट, कवि का नाम पोयट, मूर्ख का नाम स्टुपिड, खाने में टेबिल, कमाने में टेक्स। कहाँ तक इस टिटिल-टेटिल (बकवाद) को बढ़ावें, कोई बड़ी डिक्शनरी (शब्द-कोष) को लेके ऐसे शब्द ढूंढ़िए, जिनमें 'टकार' न हो तो बहुत ही कम पाइएगा! उनके यहाँ 'ट' इतना प्रविष्ट है कि तोता कहाइए तो टोटा कहेंगे। इसी 'टकार' के प्रभाव से नीति में सारे जगत् के मुकुट-मणि हो रहे हैं। उनकी पालिसी समझना तो दरकिनार, किसी साधारण प ढ़े-लिखे से पालिसी के माने पूछो तो एक शब्द ठीक-ठीक न समझा सकेगा।

इससे बढ़के नीतिनिपुणता क्या होगी कि रुज़गार में, व्यवहार में, कचहरी में, दरबार में, जीत में, हार में, बैर में, प्यार में, लल्ला के सिवा दद्दा जानते ही नहीं! रीझेंगे तो भी ज़ियाफ़त लेंगे, नज़र लेंगे, तुहफ़ा लेंगे, सौग़ात लेंगे, और इन सैकड़ों हज़ारों के बदले देंगे क्या, 'श्रीईसाई' (सी० एस० आई०) की पदवी, या एक काग़ज़ के टुकड़े पर सार्टिफ़िकेट, अथवा कोरी थैंक, (धन्यवाद) जिसे उर्दू में लिखो तो ठेंग अर्थात् हाथ का अंगूठा पढ़ा जाय! धन्य री स्वार्थसाधकता! तभी तो सौदागिरी करने आए, राजाधिराज बन गए। क्यों न हो, जिनके यहां बात-बात पर 'टकार' भरी है उनका सर्वदा सर्वभावेन सब किसी का सब कुछ डकार जाना क्या आश्चर्य है! नीति इसी का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नाम है, 'टकार' का यही गुण है कि जब सारी लक्ष्मी विलायत ढो ले गए तब भारतीय लोगों की कुछ-कुछ आंखें खुली हैं। पर अभी बहुत कुछ करना है। पहिले अच्छी तरह आंखें खोल के देखना चाहिए कि यह अक्षर जैसे अंगरेजों के यहां है वैसे ही हमारे यहां भी है, पर भेद इतना है कि उनकी "टी" की सूरत ठीक एक ऐसे कांटे की सी है कि नीचे से पकड़ के किसी वस्तु में डाल दें तो जाते समय कुछ न जान पड़ेगा, पर निकलते समय उस वस्तु को दोनों हाथों अपनी ओर खींच लावेगा। प्रत्यक्ष देखलो कि यह जिसका स्वत्व हरण किया चाहते हैं उसे पहिले कुछ भी नहीं ज्ञान होता, पीछे से जो है सो इन्हीं का! और हमारे वर्णमाला का "ट" एक ऐसे आंकड़े के समान है जिसे ऊपर से* पकड़ सकते हैं, और हर पदार्थ में प्रविष्ट कर सकते हैं; पर उस वस्तु को यदि सावधानी से अपनी ओर खीच लौ तो कुशल है नही तो कोरी मिहनत होती है! इसी से हम जिन बातों को अपनी ओर खींचना आरम्भ करते हैं उनमें 'टकार' के नीचेवाली नोक की भांति पहिले तो हमारी गति खूब होती है, पर पीछे से जहाँ दृढ़ता में चूके वहीं संठ के संठ रह जाते हैं।

दूसरा अन्तर यह है कि अङ्गरेजी के यहाँ "टी" सार्थक है और हमारे यहां एक रूप से निरर्थक। अंगरेजी में "टी" के माने चाह के हैं, जो उनके पीने की चीज़ है, अर्थात् वे अपना पेट भरना खूब जानते हैं। पर हमारे यहां "ट" का कुछ अर्थ नहीं घर का टट्टा लगा हो तो न हम बाहर जा सकते हैं, अर्थात् अन्य देश में जाते ही धर्म और बिरादरी में बदनाम होते हैं, और

* नीचे से पकड़ना अर्थात् उसके मूल को ढूंढ़ के काम में लाना और ऊपर से पकड़ना अर्थात दैवाधीन समझ कर उठाना।

Digitization by American Academy of Indic Studies AAIS(USA)

बाहर की विद्या, गुण आदि हमारे हृदय-मंदिर के भीतर नहीं आ सकते। आवैं भी तो हमारे भाई! चोर २ कहके चिल्लाय यह अनर्थ ही तो है।

तीसरा फर्क लीजिए, जितना उनके यहां "ट" का खर्च है उतना हमारे यहाँ है नहीं। तिस पर भी हम अपने यहाँ के "ट" का बर्ताव बहुत अच्छी रीति से नहीं करते। फिर कहां से पूरा पड़े। 'टकार' का अक्षर नीतिमय है, उस नीतिमय अक्षर को बुरी रीति से काम में लाना बुरा ही फल देता है। हम ब्राह्मण हैं तो टीका (तिलक) और चोटी सुधारने में घंटों बिता देते हैं, यह काम स्त्रियों के लिए उपयोगी था, हमें चाहिए, वास्तविक धर्म पर अधिक ज़ोर देते। यदि हम क्षत्री हैं तो टंटा-बखेड़ा में पड़े रहते हैं! यह काम चाहिए था शत्रुओं के साथ करना, न कि आपस में। यदि हम वैश्य हैं तो केवल अपना ही टोटा (घटी) या नफ़ा विचारेंगे, इससे सौदागरी का सच्चा फल नहीं मिलता। यदि हम अमीर हैं तो सैकड़ों रुपया केवल अपना टिमाक बनाने में लगा देंगे, टेसू बने बैठे रहेंगे, इससे तो यह रुपया किसी देश-हितकारी काम में लगाते तो अच्छा था। पढ़े लिखे हैं तो मतवाद में टिलटिलाया करेंगे, कोई काम करेंगे तो अंटसंट रीति से, सरतारे होंगे तो टालमटोला किया करेंगे।

इस ऊटपटांग कहानी को कहां तक कहिए, बुद्धिमान विचार सकते हैं कि जब तक हमारी यह टेव न सुधरेगी, जब तक हमारे देश में ऐसी ही टिचर्र फैली रहेगी तब तक हमारे दुःख-दरिद्र भी न टलेंगे। दुर्दशा योंही टेंटुआ दबाए रहेगी! हमें अति उचित है कि इसी घटिका से अपनी टूटी फूटी दशा सुधारने में जुट जायं। विराट् भगवान् के सच्चे भक्त बनें, जैसे संसार का सब कुछ उनके पेट में है, वैसे ही

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हमें भी चाहिए कि जहाँ से जिस प्रकार जितनी अच्छी बात मिलें सब अपने पेट के पिटारे में भर लें, और देशभर को उनसे पाट दें, भारतवासीमात्र को एक बाप के बेटे की तरह प्यार करें, अपने २ नगर में नेशनल कांग्रेस की सहायक कमेटी क़ायम करें, ऐंटी काँग्रेसवालों की टाँय २ पर ध्यान न दें। बस नागर नट की दया से सारे अभाव झट पट हट जायंगे, और हम सब बातों में टंच हो जायंगे। यह 'टकार' निरस सी होती है, इससे इसके सम्बन्धी आरटिकिल में किसी नटखट सुन्दरी की चटक-मटक भरी चाल और गालों पर लटकती हुई लट, मटकती हुई आंखों के साथ हट! अरे हट! की बोलचाल का सा मज़ा तो ला न सकते थे, केवल टटोल-टटाल के थोड़ी सी एडीटरी की टेंक निभा दी है। आशा है कि इसमें की कोई बात टेंट में खोंस राखिएगा तो टका पैसाभर गुण ही करेगी। बोलो टेढ़ी टांगवाले की जै।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

टिप्पणी

शिवमूर्ति

अप्रतर्क्य—तर्क से परे। **महात्मा कबीर**—वास्तव में ऐसी एक उक्ति मलिक मुहम्मद जायसी की कही हुई है—

सुनी हस्ती कर नाँव, अँधरन टोवा धारकै।
जेहि टोवा तेहि ठाँव, मुहम्मद सौ तैसा कहा॥

"Seven smiple Men of Banner" नाम की एक अँगरेजी कविता भी इसी विषय की है। **तदीय**—ईश्वर की सच्ची भक्ति करने वाले। **मृत्तिका**—मिट्टी। **त्रिगुणातीत**—सत्, रज, तम, तीनों गुणों से परे। **मसी**—स्याही। **उत्पादक**—उत्पन्न करने वाला। **बातेंगोल हैं**—रहस्यमय या गुप्त हैं। **शेखचिल्ली का महल**—निराधार वस्तु।

गंगाजी

न्यूनातिन्यून—कम से कम। **प्रच्छन्न**—अप्रकट रूप से, परोक्ष। **गंगा तरङ्ग……शिलातलानि**—गंगा की तरङ्गों के जल कणों से धोकर शीतल की हुई तट की सुन्दर और चिकनी शिलाएँ जिन पर विद्याधर बैठते थे। **इमंमे गंगे**—स्नान के समय पढ़े जाने वाले मंत्र। **एतद्विषयक**—इस विषय की। **मिश्नई**—वे ईसाई धर्म प्रचारक जो हिन्दू धर्म के साथ-साथ गङ्गाजी की भी बुराई किया करते थे। **वाज़**—उपदेश। **कहतूत**—कहावत। **स्नातक**—नहाने वाला। **त्रिताप**—आत्मिक, दैविक और भौतिक। **नजर आता………सुलेमां का**—गंगा के मार्ग का दृश्य बड़ा सुन्दर है—सुलेमान का सा सुन्दर दृश्य है; कहीं परियाँ हैं, कहीं हूर हैं और कहीं स्वयंसेवक।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धोखा

उत्पादन—उत्पन्न करना। इसी प्रकार एक शब्द है "उत्पाटन" इसका अर्थ है जड़ से उखाड़ना—दोनों शब्दों के अंतर पर दृष्टि रखनी चाहिए। वपु—शरीर। मत्स्य—मछली। आरोप—लगना या लगाना जैसे दोषारोपण—दोष लगाना। अस्तित्व—होना—Existence। जिज्ञासु—जानने की इच्छा रखने वाला—जिज्ञासा—जानने की इच्छा। भ्रमोत्पादक—भ्रम उत्पन्न कराने वाला। अकर्मण्य—आलसी। स्वत्व—अधिकार। प्राकट्य—प्रकट होना। व्यतिक्रम—क्रम या सिलसिला बिगड़ना। प्रत्यक्ष—प्रकट। इसका विपरीति अर्थ वाला शब्द "परोक्ष" है। अंततोगत्वा—अंत में। खगोल—आकाश-मंडल। प्राज्ञगण—चतुर, विद्वान। हथखंडे— चालें-घातें।

नोट—इस लेख में कहावतों के उचित प्रयोग पर ध्यान दीजिए।

काल

सचिव—मंत्री। कलत्र—स्त्री, धर्मपत्नी। महत्व विशिष्ट—विशेषतायुक्त। जमाने के तेवर पहचानना—समय के अनुसार ही काम करना चाहिए। मनीषी—चतुर; बुद्धिमान। गौरवास्पद—प्रसिद्ध; प्रतिष्ठित। कृतकृत्यता—सफलता, सिद्ध। उपर्युक्त—ऊपर कहा हुआ। भ्रू-सञ्चालन—भौं हिलाना-केवल इशारा करना।

धरतीमाता

तज्जनित—उससे होने वाले। वैमनस्य—ईर्ष्या-द्वेष। महानुभूत—सत्य—अनुभव किया हुआ। विश्वस्त—जिनका हम विश्वास कर सकते हैं—विश्वासपात्र। अनिष्ट—हानि।

Digitization by American Academy of Indic Studies, AAIS(USA)

आप

आपदा—विपत्ति, कष्ट । **अनुकरण**—अनुसरण—पीछे चलना—देखा देखी करना—महापुरुषों का अनुकरण करना उन्नति का मूल है। **द्योतनार्थ**—बताने के लिए। **अधोगामी**—नीचे की ओर जाने वाले, अवनत। **पानीदार**—शर्मदार। **पानीपानी होना**—पिघल जाना, क्रोध शांत होजाना। **उपालंभ**—उलाहना। **प्रामाणिक**—प्रमाण से विशेषण सत्य। **तद्रूपता**—उसी रूप का होना । **संपादित होना**—पूर्ण होना । **रुपांतरित**—बदल देना। **संपर्क**—सम्बन्ध में आना।

नोट—इस लेख में "पानी" के मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

बात

सहवर्ती—साथी। **संभाषण**—बात चीत। **अशरफुलमख़लूक़ात**—संसार में सबसे श्रेष्ठ । **नभ-चारी**—खग, पक्षी । **आदृत**—सम्मानित, जिसका आदर किया जाता हो। **कलामुल्लाह**—ईश्वर का वचन। **पर्याय**—एक ही अर्थ बताने वाला। **निर्गत**—बाहर निकला हुआ । **जात्योपकार**—(जात्युपकार) जाति की भलाई । **अनुगमन**—अनुकरण, अनुसरण, पीछे चलना । **अंगीकार**—स्वीकार । **विदग्धालापों**—विद्वता पूर्ण वचनों या विद्वानों की बातों।

नोट—"बात" के मुहावरों के सुन्दर प्रयोग अध्ययन करने योग्य हैं।

परीक्षा

नोट—इस लेख से हमें मिश्रजी के अनुभव-जन्य ज्ञान का परिचय मिलता है। **गुप्त रुपेण**—गुप्त रूप से। **मिष्टभाषी**—मीठे वचन बोलने वाले।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वृद्ध

यह लेख जिस समय लिखा गया था, उस समय देश में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलन हो रहे थे। नवयुवकों ने इनका स्वागत् किया और बूढ़ों ने विरोध। इन बूढ़ों पर आक्षेप करते हुए और नवयुवकों को उनका कर्त्तव्य सुझाते हुए यह लेख लिखा गया था।

वयोधिक—(वयः + अधिक) वय—अवस्था, आयु। आंतरिक कोष—समस्त जीवन के अनुभव। कलई खोलना—गुप्त रहस्यों को प्रकट करना। गट्टा सी—बहुत कड़ी-कड़ी। कबीर दास—का वह दोहा यह है—

कबिरा हाय गरीब की, हरि सों सही न जाय।
मुई खाल की साँस सों, सार भसम हुइ जाय॥

नव विधान—सुधार करने की नई-योजना। मौखिक—(मुख से विशेषण) oral, जबानी। बृहज्जीवनआशा—(बृहत् + जीवन + आशा) बृहत्—बड़ी, अधिक। शुश्रूषा—सेवा। अनित्यता—नाश हो जाना। पसेमर्ग—मरने के बाद। यावदवयव—सब अंग। भगवच्चरणानुसरण—(भगवत् + चरण + अनुसरण) भक्ति करना। कुत्सित—गंदा, व्यर्थ।

नोट—चुभता हुआ व्यंग्य इस लेख की विशेषता है।

दांत

यावत्—सब, समस्त। बरुणी—पलक के बाल। पन्नगी—सर्पिणी। छहों रस—अम्ल, तिक्त, कटु कषाय आदि। नवों रस—शृङ्गार, रौद्र, वीर, वीभत्स, हास्य, करुण, अद्भुत, भयानक और शांत। दंतावली—अवली = कतार—दाँतों की पंक्तियाँ। स्थान भ्रष्टा……नराः—अपने स्थान से गिरे हुए दाँतों,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

केशों, नखों, मनुष्यों, किसी का आदर नहीं होता। आदर तभी तक होता है, जब तक ये अपने पद पर हैं।

दाँता किलकिल—आपस की कलह।

नोट—"दाँत" के मुहावरों का उचित प्रयोग देखिए।

स्वतंत्र

नेचर—प्रकृति—अँगरेजी के शब्दों का प्रयोग मिश्रजी ने अधिक नहीं किया है। व्यस्त—चिंतित। कोढ़ में खाज—इसी ढंग की एक कहावत है गरीबी में आटा गीला। नाट्य करना—दिखावा करना। कुलांगनाओं—आज कल की स्त्रियों के विषय में यह नहीं कहा गया है। आर्यत्व की स्थिरता—आर्य हिंदू-धर्म से तात्पर्य है। छब्बीसाक्षरी—अँगरेजी के २६ वर्णों से तात्पर्य है। आंतरिक—हृदय के। टाइप वाले—अपनी तरह के, यह दूसरा अँगरेजी शब्द है। वाह्यिक—बाहरी-ऊपरी। समागम मिल-जुल कर। परिचर्या—'परिचित' से तात्पर्य है। इतरता—परायापन—क्षुद्रता। लक्ष्य—जान पड़ता है कि मिश्रजी ने किसी पर आक्षेप करते हुए यह लेख लिखा था। दुराशा—जिस आशा के पूर्ण होने में आरम्भ से ही संदेह हो।—निराशा—कार्य करने के पश्चात् सफलता में संदेह होना। अनुदार—जो उदार न हो, कृपण। नेटिव—अपने देश का—अङ्गरेजी का शब्द है। तत्वज्ञ-तत्व समझने वाला। विभ्रम—पागल—भ्रम में फँसे हुए।

खुशामद

मीन-मेष—संदेह। बैल को दुहकर—असम्भव और अप्राकृतिक बात को भी सहज और सरल हो जाना। उदरंभर—केवल अपना पेट ही भरने वाला; स्वार्थी। स्वार्थ परायण—स्वार्थी।

होली है

अनावृष्टि—पानी न बरसना। मुहर्रमी—उदास।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

H89
P77P

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

SRI PRATAP SINGH
PUBLIC LIBRARY,
Srinagar.

A book borrowed must be returned within one month of its issue. It may be reissued for fifteen days, if not requisitioned by another member. Members residing outside Srinagar may return books within forty days of their issue.

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)